।। श्रीमस्तनाथचरितम् ।।

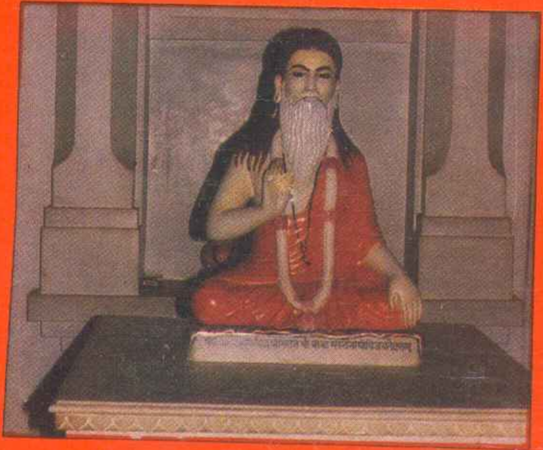

डॉ० सौभाग्यवती नान्दल

।। श्रीमस्तनाथचरितम् ।।

डॉ० (श्रीमती) सौभाग्यवती नान्दलकृत

❑ *प्रकाशक :–*

महामहिम श्री बाबा चाँदनाथ जी योगी (पीठाधीश्वर)

मठ, अस्थलबोहर, रोहतक।

❑ द्वितीय संस्करण : फाल्गुन शुक्ला नवमी, 2063 वि० (24 फरवरी, 2007 ई०)

❑ पुनर्मुद्रण का अधिकार केवल संस्था एवं लेखिका को

❑ मूल्य : रुपये 30

❑ मुद्रक : **वेदव्रत शास्त्री**

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, गोहानामार्ग, रोहतक।

फोन : 01262-276874, 277874

नोट : 1. इस पुस्तक की पाण्डुलिपि 1997 में गुम हो गई थी। संस्था के अतिरिक्त उसका प्रकाशन अवैधानिक होगा। (प्रकाशक)

2. इस पुस्तक की छपवाई हेतु दान देने के लिए लेखिका से सम्पर्क करें :–

फोन : 01262-292109

पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित
ब्रह्मलीन सिद्ध श्री महन्त श्रेयोनाथ जी महाराज

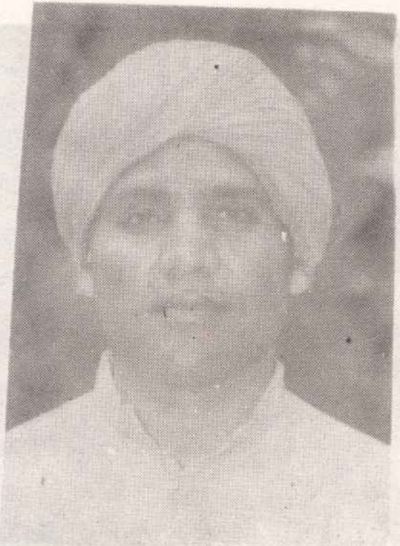

अनन्त श्री विभूषित
श्री महन्त चाँदनाथ जी योगी (पीठाधीश्वर)

गुरुदेव सिद्धशिरोमणि श्री बाबा मस्तनाथजी की सेवा में समर्पित

— सौभाग्यवती नान्दल

मुख्य पुजारी श्री बाबा हजारीनाथ जी

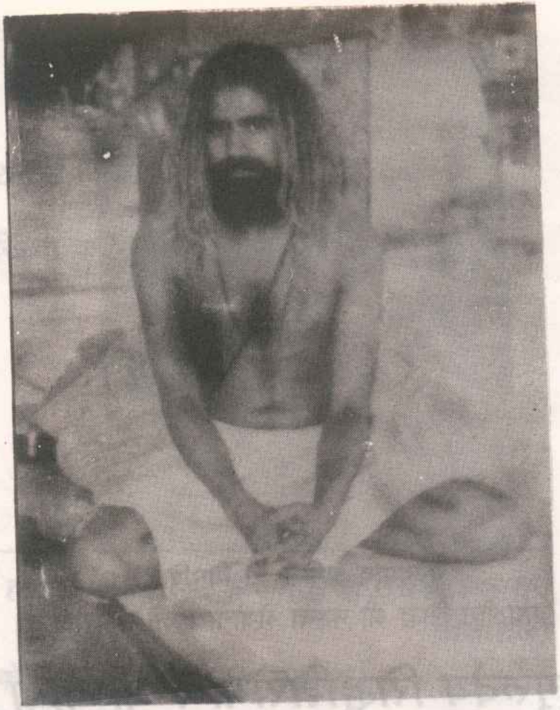

श्री बाबा दीवाननाथ जी तपस्वी, धूना अस्थल बोहर

आशीर्वचन

भूतल पर जब–जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब भगवान् धर्म की संस्थापना हेतु अवतार लेते हैं। ऐसी परिस्थितियों में ही आदिनाथ शिव ने महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी के रूप में अवतार लिया और योग को युगसम्मत रूप प्रदान करके जनता का उपकार किया तथा गोपीचन्द, भर्तृहरि आदि राजाओं को योग का उपदेश देकर उनका कल्याण किया।

कलिकाल में उन्हीं महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी ने श्रीबाबा मस्तनाथजी के रूप में अवतार लेकर अनेक प्रकार की अद्‌भुत सिद्धियों की लीला को दिखाते हुए संतप्त प्राणि–जगत् का उद्धार किया और पथभ्रष्ट मानव को सन्मार्ग में प्रवृत्त किया।

उन सिद्धशिरोमणि का चरित नित्य पूजा–पाठ की दृष्टि से सरल भाषा में लिखकर डॉ० सौभाग्यवती ने श्री नाथजी के चरित को कम पढ़े–लिखे भक्तों के लिए सुगम बना दिया है। इसमें उन्होंने महासिद्ध श्री गुरु गोरक्षनाथजी द्वारा विपद्‌ग्रस्त भक्त पूर्णमल का उद्धार करना एवं सिद्ध श्रीबाबा मस्तनाथजी के बाल्यकाल से लेकर निर्वाणपर्यन्त आख्यान का उल्लेख किया है, जिसमें नाथजी द्वारा

लोगों को सद्धर्म में प्रवृत्त करने हेतु किए गए चमत्कार–वर्णन के साथ–साथ अनेक शिक्षाप्रद उपदेशों का भी संकलन है। अन्त में कुछ प्रार्थनाएँ भी दे दी गई हैं।

मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक भक्तजन एवं सन्तों के साथ–साथ श्रद्धालु जनता के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। इसके नित्य पाठ से व्यक्ति सब प्रकार के कष्टों से मुक्त होकर परम शान्ति पायेगा। अतः भक्तजन इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य लाभान्वित होवें। शुभाशीर्वाद के साथ।

(चाँदनाथ योगी)

पीठाधीश्वर, मठ, अस्थलबोहर,

रोहतक (हरियाणा)

विषय-सूची

क्र० सं०		विषय	पृष्ठ सं०
	भूमिका		
1.	पहला अध्याय–	गोरक्षजी द्वारा विपद्ग्रस्त पूर्ण का उद्धार एवं मस्तनाथजी का अवताररूप में प्रकट होना।	१
2.	दूसरा अध्याय–	मस्तनाथजी की बाललीला।	१२
3.	तीसरा अध्याय–	दुग्ध–वर्षा सिद्धि प्रदर्शन।	१६
4.	चौथा अध्याय–	मस्तनाथजी की रात्रिलीला।	२५
5.	पाँचवाँ अध्याय–	शिष्य मस्त की गुरुसेवा।	३०
6.	छठा अध्याय–	आईपंथ में नाथसंज्ञा का अवतारीकरण एवं विभूतियोगदर्शन अथवा पेहवा में बारहपंथ को सिद्धिदर्शन कराना।	३६
7.	सातवाँ अध्याय–	बोहरग्राम में वर्षा कराना।	४५
8.	आठवाँ अध्याय–	लंगड़ी को पैर एवं अन्धे को दृष्टि प्रदान करना।	५१
9.	नौवाँ अध्याय–	मस्तनाथजी का त्रिकालदर्शन।	५७
10.	दसवाँ अध्याय–	शीलका उद्धार अथवा देवसभादर्शन।	६४

11. ग्यारहवाँ अध्याय– मस्तनाथजी का आत्मपरिचय एवं गोपीचन्द–भर्तृहरि का दर्शन कराना। ७४
12. बारहवाँ अध्याय– वेदनियमप्रचार अथवा साधुनिरादर। ७६
13. तेरहवाँ अध्याय– सूखे पेड़ को हरा करना एवं संतानहीन को संतान प्रदान करना। ८५
14. चौदहवाँ अध्याय– पाईदण्डदान। ६०
15. पन्द्रहवाँ अध्याय– कपिलाजीवनदान। ६८
16. सोलहवाँ अध्याय– बाबा की मृगलीला एवं जीवहिंसानिषेध। १०२
17. सतरहवाँ अध्याय– आलमशाह को परचा देना। १०८
18. अठारहवाँ अध्याय–प्रलयाग्नि से ग्रामदाह। ११६
19. उन्नीसवाँ अध्याय–बीकानेर राज्य में मिष्टान्न एवं कटाह को स्वर्ण में बदलना तथा शिष्यपत्नी को मतीरादान। १२३
20. बीसवाँ अध्याय– भीमसिंह का दर्पहरण एवं मानसिंह को राज्यारूढ़ करवाना। १३१
21. इक्कीसवाँ अध्याय– धाता–रणपति–योगदर्शन। १४३
22. बाईसवाँ अध्याय– धड़ीनाथ की बुभुक्षा निवारण एवं धाता रणपति द्वारा हस्तिबलप्रदर्शन। १४८
23. तेइसवाँ अध्याय– नाथजी का उपदेशदान, निवार्णप्राप्ति तथा तोतानाथजी द्वारा मन्दिर का निर्माण। १५४
24. प्रार्थना–संग्रह १६३

भूमिका

सिद्धशिरोमणि श्रीबाबा मस्तनाथीजी का चरित संस्कृतभाषा, ब्रजभाषा एवं रागनियों में लिखा हुआ है। जिस कारण साधारण भक्तजन को उनके चरित को हृदयंगम करने में कठिनाई महसूस होती थी। उनकी आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए ही मैंने पूज्यवर गुरुजनों के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ नित्य पूजा–पाठ की दृष्टि से सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया है।

यह ग्रन्थ श्रीमस्तनाथचरितम् के मेरे हिन्दी अनुवाद, स्वर्गीय द्रव्येश झा मैथिल द्वारा अनूदित खण्डित पाण्डुलिपि तथा श्री शंकरनाथयोगिकृत ब्रजभाषा के ग्रन्थ श्रीमस्तनाथचरित पर आधारित है। बीच में एकाध नीतिप्रद वचन मैंने प्रसंग की दृष्टि से स्वयं भी लिख दिया है ताकि ग्रन्थ एक आख्यानमात्र बनकर न रह जाए।

ग्रन्थलेखन में अपने शुभाशीर्वाद से उत्साहवर्धन करनेवाले अनन्तश्रीविभूषित योगिराज चाँदनाथजी (महन्त), पुजारी श्री हजारीनाथजी व तपस्वी श्री दीवाननाथजी के प्रति नतमस्तक हो आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है जिनके आशीर्वचनों से ही मैं यह कार्य कर सकी। साधुवर्य राकेशनाथजी का

सहयोग भी अविस्मरणीय है जिन्होंने सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन करके मुझे अपेक्षित सुझाव दिए। पूज्य पतिदेव श्री ओम्प्रकाशजी के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपेक्षित है जिन्होंने प्रकाशन–कार्य में अत्यन्त सहयोग दिया। अन्त में मैं कु० सुनीति एवं हर्षवर्धन के सहयोग के लिए आशीर्वादात्मक आभारवचन व्यक्त करती हूँ जिन्हें मैंने अत्यावश्यक सुविधाओं से वंचित रखकर इस ग्रन्थ को पूरा किया। पं० श्री वेदव्रत शास्त्री का सहयोग भी अतुलनीय है जिन्होंने समस्त ग्रन्थ का प्रूफ संशोधन किया तथा श्री देवेन्द्र गुप्ता ने उत्तम टंकण कार्य करके ग्रन्थ को शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया है।

अनेक कठिनाइयाँ सहन करते हुए भी मैंने जो ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की वह सब मेरे गुरुदेव के शुभाशीर्वाद का ही परिणाम है शेष ग्रन्थगत त्रुटियाँ मुझ नाथभक्त की हैं और उनके लिए लेखिका क्षमाप्रार्थी है। भक्तजनों के सुझाव सम्मान्य हैं।

—सौभाग्यवती

श्रीमस्तनाथचरितम्

पहला अध्याय

जिनके चरणकमल का स्मरण सम्पूर्ण विघ्नसमूह को इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूर्य अन्धकाराशि को, ऐसे गणपति देव का पूजन करके बुद्धि की मन्दता का हरण करने वाली माँ सरस्वती का ध्यानकर तदनन्तर गुरुचरणों में शीश झुकाकर मैं गुरुप्रताप के कारण ही सिद्ध मस्तनाथ जी के चरित का संक्षिप्त वर्णन कर रही हूँ।

परब्रह्मस्वरूप आदिनाथ का अवतार मच्छेन्द्रनाथजी हुए जो नित्यनाथ नाम से भी जाने जाते हैं तथा मत्स्येन्द्रनाथजी के शिष्य श्री गोरक्षनाथजी भी आदिनाथ के अवतार माने जाते हैं, जिन्होंने अपनी अलौकिक योगशक्ति से जगत् में अनेक चमत्कार दिखाए तथा दीनों (दलितों) का उद्धार किया। उन्होंने ही अपना पन्थ चलाया जो आज भी 'नाथसम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। वही गोरक्षनाथजी एक बार तपस्या करते हुए एक वन में जा ठहरे। वे वन में विचरण कर रहे थे, उसी समय उन्हें एक करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। उन्होंने

शिष्य को अन्वेषण हेतु भेजा। शिष्य आज्ञा पाते ही ध्वनि का अनुसरण करता हुआ एक कूप के नजदीक जा पहुँचा, जिस तरफ से आवाज आ रही थी। तदनन्तर शिष्य ने गुरुजी के समीप जाकर सारा हाल सुनाया। तब गुरुदेव स्वयं उस कूप के समीप पहुँचे और उन्होंने पूछा कि कुएँ में असुर, देवों तथा योगियों में से कौन है ? मुझे बतलाइए। उस सन्त की अमृतमयी वाणी को सुनकर कूप से आवाज आई कि हे भगवन् ! मैं विपत्ति का मारा हुआ मानव हूँ और नाथजी की वन्दना करता हुआ वह पुनः कहने लगा कि आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विधाता (बनानेवाले) हैं तथा संसार की प्रत्येक गतिविधि को जानते हैं।

उसी समय गोरक्षनाथजी ने कूप से बालक के समान भावपूर्ण मधुर वाणी सुनकर कच्चे धागे से बनी हुई रस्सी से उसे कूप से बाहर निकाला और उसे प्रत्युत्तर देते हुए नाथसंज्ञा अर्थात् नाथ की पदवी दे दी। फिर उसकी विपत्ति का सारा हाल पूछा। उस बालक ने बताया कि मैं सियालकोट के राजा शालिवाहन का पुत्र हूँ। मेरी विमाता ने कामदेव से संतप्त हो मुझे अपने समीप बुलाया और अपनी कुत्सित इच्छा प्रकट की परन्तु मैंने उसके दूषित वचनों को नहीं माना जिसके परिणामस्वरूप उसने मुझपर शीलभंग प्रयास का आरोप लगा दिया। जिसे सुनकर राजा बहुत क्रोधित हुए और उसने गुस्से में

मेरे हाथ–पैर कटवाकर मुझे इस कूप में गिरवा दिया परन्तु अपने पूर्वकर्मों में अर्जित अपने पुण्य कर्मों के कारण मैं मरा नहीं और आप सन्त के द्वारा इस कुएँ से बाहर निकाल लिया गया हूँ।

उस संतप्त बालक की आत्मकथा को सुनकर भगवान् गोरक्ष गद्गद् हो उसे आशीर्वाद देते हुए कहने लगे कि तुम्हारी तपस्या असाधारण है समस्त गुण आपमें एक साथ विद्यमान हैं। शुद्धचित्त होने के कारण आप निर्मल हैं। संसार में तुम्हारे द्वारा किये गए इस प्रकार के कार्य से तुम्हारे माता–पिता का मुख उज्ज्वल हो गया है। अब तुम्हारी स्थिति परमात्मा के समान हो गई है। तुम संसार में अमर हो जाओगे। तुम्हें अब कभी मृत्यु का भय नहीं रहेगा। तुम्हारा शरीर देवों के तुल्य वज्र के समान मजबूत हो जायेगा। शिव तुम्हारा प्रत्येक क्षेत्र में कल्याण करे। मैं स्वप्न में, विपत्ति में, कष्ट आदि प्रत्येक अवस्था में तुम्हारा सहचर हूँ। तुम परम पद को प्राप्त हो जाओ। तुम्हारी गंभीर पीड़ा दूर हो जाए तथा तुम पहले की भाँति पूर्ण हो जाओ।

ऐसा आशीर्वाद पाते ही उस बालक के सब अंग पूर्ण हो गए और इसी कारण कालान्तर में वह पूर्णमल्ल नाम से विख्यात हुआ। तब गोरक्षजी ने उसे आदेश दिया कि

पुत्रवियोग में रो–रोकर अन्धी हुई अपनी माता के पास जाकर उसे सान्त्वना दो ताकि तुम्हारे माता–पिता असाधारण सुख से युक्त हो जाएँ। फिर नाथजी ने उसे अपने पन्थ में दीक्षित कर लिया और उसके चिह्न– कानों में कुण्डल, गले में सेली तथा सिर पर सींगी भी प्रदान की।

गोरक्षजी से आशीर्वाद प्राप्त कर वह पूर्ण अपने पिता के नगर में पहुंचा और अपनी माता इच्छावती (इच्छरा) को तुरन्त अपने दर्शन से आनन्दविभोर कर दिया। उसकी आँखों में पुनः ज्योति आ गई। उसका पिता शालिवाहन भी अपने पुत्र का आलिंगन कर सुखी हो गया। उसके नगर का उद्यान पुनः हरा हो गया। उस समय इस कृत्य को देखकर आकाश से देवताओं के हाथों से पुष्पवृष्टि होने लगी क्योंकि पूर्ण को त्रास देने के तुरन्त पश्चात् राजा शालिवाहन का उद्यान सूख गया था। इसका कारण पूछने पर ज्योतिषियों ने विमाता के कुकृत्य को बताया था तथा भविष्यवाणी भी की थी कि आपका पुत्र जीवित है, जब वह आयेगा तभी यह उद्यान (बाग) हरा भरा होगा। सो पूर्ण के वहाँ प्रवेश करते ही वह हरा हो गया। अतः उसकी विमाता ने प्रजाजनों के समक्ष ही अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की।

वही बालक पहले हाथ–पैर कटने के कारण चतुरंगी कहलाया तथा बाद में गोरक्षनाथजी

द्वारा अंगों के पूर्ण होने के कारण पूर्ण अथवा पूर्णमल्ल कहलाया। उनका वही कूप जिसमें उनको फेंक दिया था, आज भी (पाकिस्तान में) विद्यमान है। सन्तानहीन व्यक्ति आज भी उस कूप से जल लाते हैं। उस जल से स्नान करने से बांझ स्त्रियाँ भी सन्तान पा लेती हैं और वहाँ निवास करने वाला व्यक्ति सिद्ध हो जाता है। उस कुएँ का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। सिद्ध पूर्णमल्ल का धूना आज भी अस्थलबोहर (रोहतक) के मठ में विद्यमान है, जिसपर अखण्ड ज्योति प्रज्वलित है। उनका समय आठवीं शताब्दी माना जाता है। उन्होंने बोहर के मठ में उत्तम तपस्या की थी। उसी मठ में निवास करते हुए उन्होंने पादमार्ग को चलाया तथा उन्हीं के द्वारा पाव तथा पाकल नाम वाले पन्थ भी चलाये गए। इसी मठ से योगप्रचारहेतु किसी समय चौरासी की संख्या में पालकियाँ विभिन्न दिशाओं में जाती थीं। यहीं पर प्राचीन समय में एक तालाब था जो अब मात्र एक गड्ढा रह गया है। यह एक अनोखा तालाब था जिसकी मिट्टी के प्रभाव से लोग रोगमुक्त हो जाते थे। आजकल भी भक्तजन कुछ रोगों में इसकी मिट्टी का उपयोग करते हैं।

सिद्ध चौरंगीनाथ (पूर्णमल्ल) जी के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ इन्हें मत्स्येन्द्रनाथजी का शिष्य बतलाते हैं परन्तु भूतल पर चौरंगीनाथ गोरक्षनाथजी के शिष्य के

रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। वही चौरंगीनाथजी एकबार भारतदेश में हरियाणा प्रान्त में तपस्या में लीन थे। उसी हरियाणा प्रान्त में एक रोहतक (प्राचीन नाम रोहतासगढ़) शहर विद्यमान है। यहाँ के लोग स्वधर्मानुरूपी सिद्धों के मार्ग पर चलनेवाले तथा दूध–दही के भोजन में रुचि रखनेवाले हैं। वे यथाशक्ति हरि के गुणों में तथा दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं और निरन्तर सज्जनों की सेवा करते हैं। जहाँ घरों में भगवान् के कुशल भक्तों का निवास है जो साधुजनों से अधिक स्नेह रखते हैं। दया, धर्म और भक्ति में रुचि रखने वाले, सदाचारी तथा अहिंसक हैं।

पूर्वकाल में बहुत सघन खाण्डव वन इस प्रदेश में था। इसी रोहतक जिले में केसरिहट्ट नाम का एक सुहावना नगर था। वहाँ पर रैवारी जाति का, याचकजनों का सत्कार करने वाला, धन–धान्य से अत्यन्त समृद्ध परन्तु सन्तानहीन सबला नामक व्यक्ति निवास करता था। उसका व्यापार बहुत बढ़ा हुआ था। वह वैश्यों का मुखिया था परन्तु सन्तानहीनता के कारण (सन्तान न होने से) बहुत दुःखी रहता था।

एक बार वह व्यापार करता हुआ यमुना के निकट जा पहुँचा। वहाँ उसकी गोरक्षनाथजी से भेंट हुई। यमुना के किनारे भौरें गुंजार कर रहे थे। जहाँ–तहाँ सुगन्धित पुष्प बिखरे

हुए थे, ठण्डी हवा चल रही थी। वहाँ विराजमान गोरखसाधु के सिर पर सुनहरी जटाएँ शोभायमान थी। शरीर पर भस्म रमी हुई थी। हाथ में वीणा थी। कानों में कुण्डल सुशोभित थे, बड़े–बड़े नेत्र थे, सुन्दर शरीर था मानो तेजस्वी योगी (पहुँचा हुआ) ही विराजमान हो। उनके तेजस्वी रूप को देखते ही सबला के मुख से अनायास ही आदेश[1] शब्द निकल पड़ा और नम्रहृदय हो उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर फल–पुष्पादि भेंट किए। तब उसकी श्रद्धा से प्रसन्न हो नाथजी ने कुछ वर मांगने के लिए कहा। तब नाथजी के इस वचन को सुनकर सबला ने हाथ जोड़, विनम्र प्रार्थना की कि हे नाथ ! मुझे एक सुखदायी और तेजस्वी पुत्र प्रदान कीजिए क्योंकि मेरे कोई सन्तान नहीं है। इसे सुनकर नाथजी ने अमृतमयी वाणी में कहा कि हे ज्ञानी ! तू श्रेष्ठ और ज्ञानी पुत्र पावेगा जिसके गुणों और यश की कीर्ति चारों दिशाओं में फैलेगी और वह धर्म के मार्ग का चारों दिशाओं में अत्यधिक विस्तार करेगा। उस पुत्र के पाने से तुम्हारा सब शोक तथा भय दूर हो जायेगा। सबला को यह अभीष्ट वर देकर गोरक्षनाथजी तुरन्त अन्तर्धान हो गए। परन्तु सबला वहाँ हतप्रभ सा खड़ा हुआ कहने लगा कि गुरुजी ने जो उत्तम सन्तान होने का वर दिया है उससे मेरा

---

१. नाथसम्प्रदाय में नमस्कार के लिए 'आदेश' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

सब दु:ख दूर हो गया है। ऐसा वचन कहकर वह व्यापार के लिए विदेश न जाकर वापिस ही घर लौट आया और घर आकर अपनी पत्नी से मार्ग का सब हाल कह सुनाया। उसकी स्त्री भी इच्छानुसार वर मिल जाने से बहुत प्रसन्न हुई। फिर उन्होंने बालक के लिए एक वर्ष तक इंतजार किया। वह कभी सोचती कि मेरे पति से मुझे पुत्र होगा अथवा बिना किसी प्रकार के सम्बन्ध से स्वत: ही पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी। परन्तु उसने पुत्रप्राप्ति में सन्देह नहीं किया अपितु आशा बांधे रखी।

श्रीनाथ ने अपने मन में विचार किया कि मेरा आवागमन नहीं है परन्तु मुझसे मेरे समान पुत्र माँग लिया गया है। किसी प्रकार का दानादि उपाय भी मैंने उसको नहीं बताया और न ही कोई औषधि बताई किन्तु सिद्धिमार्ग से मैंने उसे पुत्र दे दिया है। यदि सिद्धि से पुत्र देना है तो गर्भ में जाने की क्या आवश्यकता है। अपने समान तेजस्वी पुत्र देने का मैंने वर दिया है, उसे मिथ्या (झूठा) करना हमारे जैसे सिद्धों को शोभा नहीं देता इसलिए स्वयं बालरूप धारण करके वहाँ कुछ समय बिताऊँ तथा रैवारी का पुत्र कहलाऊँ। ऐसा करने से मेरा सिद्धान्त भी झूठा नहीं होगा।

नाथ भक्तवत्सल हैं और उन्हें मनोवांछित फल भी देते हैं। जिन गोरक्षजी के अंश

(मात्रा) से तीनों लोक वश में हो जाते हैं, उन्होंने पंचतन्मात्राओं से बनी हुई अपनी मूर्ति माया से धारण की और उस ग्राम के समीप ही वन में बरगद (बड़) के वृक्ष के नीचे अपना अत्यन्त सुन्दर एवं तेजस्वी बाल रूप धारण कर लिया। उसी समय उस गाँव के समीप ही वन में शिव की पूजा के निमित्त बड़ा मेला लगा हुआ था। इस कारण उस मेले में उस रैवारिदम्पती (पति–पत्नी) ने लगभग एक वर्ष की आयु के बालक को देखा जिसकी कमल के समान बड़ी–बड़ी आँखें थीं। चौड़ा मस्तक था, अत्यन्त सुन्दर शरीर था। उस बालक को देखकर पति–पत्नी ने अपनी मनोकामना को फलित हुआ समझा और बड़ी खुशी से 'यह मेरे नाथजी की माया है' ऐसा कहकर झट से स्त्री ने बालक को गोद में उठा लिया और उन्हें यह भी भान (ज्ञान) नहीं रहा कि यह बालक हमारा है या किसी दूसरे का परन्तु सबला ने मन में सोचा कि इस महाजंगल में बालक कहाँ से आया ? क्या कोई प्यासी नारी बालक को छोड़कर पानी पीने गई है अथवा भूखी है जो वन के फल खाने गई है अथवा कोई वनदेवता बाल रूप बनाकर हमारे सामने (सम्मुख) वर्तमान है। बड़ा खेद है ! यह रोता हुआ बालक कहाँ से आया है अथवा कौन लाया है ? तब वह स्त्रीसहित वन में खोजने गया परन्तु उन्हें कोई व्यक्ति नहीं मिला। तब वे पुनः बालक के पास आए और सबला ने

जोर–जोर से आवाज़ लगाई कि यह बालक जिसका है, वह इसे ले जावे परन्तु बार–बार बालक के माता–पिता अथवा संरक्षक को आवाज लगाने पर भी जब कोई नहीं आया तब वे पूछते–पूछते समीपवर्ती गाँव में जा पहुँचे और वहां पर भी बालक के माता–पिता के विषय में पूछा परन्तु उत्तर किसी से कुछ भी न मिला। मार्ग में चलते हुए लोगों से पूछने पर भी मालूम नहीं हो सका कि यह किसका बालक है और परस्पर बातचीत से भी बालक के विषय में कुछ भी पता नहीं चला। तब गाँव के लोगों ने कहा कि तुम्हें ही यह बालक जंगल से मिला है। अतः अब तुम ही इसे रक्खो। तुम ही इसे लेने के अधिकारी हो। यह अन्य किसी का नहीं है। सारे नगरवासियों ने ऐसा कहकर वह बालक उसी को दे दिया। सबला बालक को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मन ही मन सोचा कि यह बालक तो मेरे गुरु का ही दिया हुआ है। अतः उसने उसकी प्राप्ति से स्वयं को कृतकृत्य (धन्य) समझा तथा सबला की स्त्री का मन जो सन्तान अभाव के कारण टूट गया था, वह प्रफुल्लित हो उठा। वह बालक को हृदय से लगा बार–बार उसका मुख चूमने लगी। वह दम्पती पूर्ण मनोरथ होकर यह कहने लगे कि हमारा बड़ा भाग्य है, ईश्वर ने हमें वन में बालक दिया। उस सबके पालनहार परमेश्वर ने हम पर बहुत अधिक कृपा की है।

घर लौटते ही पुत्र–प्राप्ति होने के कारण उन्होंने अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार प्रारम्भ कर दिया। अत्यन्त आनन्द में मग्न होकर उन्होंने भाँति–भाँति के बाजे बजाए तथा ब्राह्मणों को गोदान एवं धनादि देकर अत्यन्त सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त गायकों एवं भाट–चारणादि तथा भिक्षुकों तक को प्रचुर दान–दक्षिणा देकर खुश कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि विक्रम संवत् 1764 (१७६४) में बाबा मस्तनाथजी जगत् में बालरूप में प्रकट हुए।

।। श्रीमस्तनाथचरित में सिद्ध गोरक्षनाथजी द्वारा विपद्ग्रस्त पूर्ण का उद्धार व मस्तनाथजी का अवताररूप में प्रकट होना नामक पहला अध्याय समाप्त।।

दूसरा अध्याय

जिसका कोई आकार नहीं, जो अपने सहारे विद्यमान है, अजर और अमर उस सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप नाथजी की मैं वन्दना करती हूँ। जिस परब्रह्म ने बालक रूप में अवतार लिया था उसी बालक का माता–पिता ने मस्त नाम रखा। उसी के द्वारा बचपन में की गई लोगों को आनन्द देने वाली लीलाओं का मैं वर्णन कर रही हूँ।

जब बालक की आयु लगभग दस वर्ष की हो गई तो माता–पिता ने विचार किया कि इस बालक से कुछ काम–काज तो होता नहीं, यह सारा दिन खेल में लगा रहता है। गाँव में कोई ज्ञानी पण्डित भी नहीं है जिससे यह कुछ पढ़ना–लिखना सीख जाए। तो फिर यह अपनी आयु को सुखपूर्वक कैसे बिताएगा ? इस प्रकार उनके माता–पिता को हमेशा फिकर रहने लगी क्योंकि जो माता–पिता अपनी सन्तान को नहीं पढ़ाते, वे संरक्षक (पिता) कहलाने योग्य नहीं होते, वास्तव में वे सन्तान के शत्रु होते हैं। अतएव अध्यापन अनिवार्य है। परन्तु गाँव में पढ़ाने का कोई साधन नहीं था तो उन्होंने उसे ग्वालों के साथ गौओं की सेवा करने के लिए भेज दिया क्योंकि माता–पिता ने उसके लायक काम दूढ़ लिया था।

पुत्र ने भी पिता की आज्ञा का पालन किया क्योंकि जो बालक अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता वह पुत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। ऐसा विचार कर वह मस्त बालक सवेरा होते ही ग्वालों के साथ गाय चराने जंगल की ओर चल पड़ा। वह बालक वन में मीठी–मीठी किलकारियाँ मारता हुआ (आवाज़ लगाता हुआ) जब गायें चलतीं तो वह भी उनके पीछे चल पड़ता और जब वे बैठ जातीं तो वह भी बैठ जाता। गायें जब आनन्द से उछलती तो वह भी कूदने लग जाता। इस प्रकार वह नित्य प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगा।

एक दिन उसने सुख से बैठी हुई अपनी गायों को देखकर लड़कों को बुलाया और उनको कहा कि राजा दिलीप की तरह गोसेवा करनी चाहिए क्योंकि दूध, दही, लस्सी, मक्खन, घी और दूध से बनने वाले खीर इत्यादि जितने भी मीठे पदार्थ हैं, उन सबको देने वाली गौ ही है। गौ का दूध शरीर को पुष्ट करता है, दिमाग की ताकत बढ़ाता है और वीर्य का उत्तम साधन है, विशेषकर रोगियों और बालकों के लिए हितकर एवं आसानी से पचने वाला होता है। वह मधुर होता है जो मरण समय तक भी पीया जाता है। ऐसी सबका पालन करनेवाली गौ, माता से भी उत्तम है। गौ की सन्तान बैल बोझ ढोते हैं तथा खेती

के सब कामों में काम आते हैं। इसके अतिरिक्त गौ के दूध से यज्ञ की सिद्धि होती है। यज्ञ से धर्म की स्थिति है और गौ के दर्शनमात्र से ही धर्म होता है तथा गोधूलि से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा सुनकर उन सब ग्वालों ने अपने मुखिया मस्त की प्रशंसा की और उस दिन से माता की तरह गोसेवा करने लगे।

इस प्रकार पालियों (ग्वालों) के साथ धेनु (गाय) चराते–चराते कुछ दिन बीत गए। तब एक दिन ग्राम के बालक जिनको उन्होंने पहले खुश किया था और जिनके साथ प्रेम से खेले थे, वे मित्र आकर प्रेम से कहने लगे कि अब आप ग्वाल बन गए हो। अतः हम आपको क्या वनमाली (कृष्ण) माने ? बताइए ! आपने अपने पुराने मित्र हम लोगों को क्यों भुला दिया ? आपने अपने मधुरवचनों से, सुन्दर गीतों से और बालकपन की चेष्टाओं से भय को छोड़कर अपनी लीलाओं को दिखलाया है। हे सखा ! आपके बिना हमें सब खेल सूने लगते हैं। आपके सिवाय हम और किसका सहारा लें और क्या करें ?

बालकों को उदास देखकर मस्त का हृदय प्रेम से आर्द्र हो उठा। उन्होंने विचार किया कि अब मैं सबका मान रखूँगा। यहाँ गाँव में बालकों के साथ खेलूँगा भी और वहाँ जंगल में पिता के आदेशानुसार धेनु भी चराऊँगा। अतः उन्होंने अगले प्रातः ही एक समान

दो रूप धारण किए और एक से गौ चराने गए तथा दूसरे उसी तरह के रूप से लड़कों के साथ गाँव में खेलने लगे क्योंकि वे योगाचार्य थे। अतः ऐसे स्वरूप को भी धारण कर सकते थे। पिता ने जब उसको वहाँ बहुत बार गाँव में बालकों के साथ खेलता देखा तब मन में विचार किया कि इसको तो खेल प्यारा है। यह क्या गायें चराता होगा। तब साँझ होते ही पिता ने ग्वालों से पूछा कि मस्त का सारा हाल बताओ कि यह कितनी देर धेनु (गाय) चराता है। तब ग्वालों ने कहा कि यह तो सारा दिन हमारे साथ रहता है और गायें चराता रहता है। हमारा साथ छोड़कर कहीं भी नहीं जाता। तब उन्हें धमकाते हुए पिता ने कहा कि हे ग्वालो ! तुम झूठ बोल रहे हो। हम इसे हर रोज बालकों के साथ गाँव में खेलते हुए देखते हैं। मस्त ने भी कहा कि मैं नित वन में धेनु चराने जाता हूँ। सबला (मस्त का पिता) चुप रह गया।

एक दिन फिर उसने उसे पहले की भाँति गाँव में खेलते पाया। तब उसने सोचा कि आज इसकी झूठ (चोरी) पकड़ने का अच्छा मौका है। अतः वे उसी समय वन में चले गए। वहाँ उसे ग्वालों के साथ गाय चराते देखा। तब पुनः गाँव आया तो उसे बालकों के संग खेलते पाया। इसे देख सबला अत्यन्त चकित हुआ और कुछ भ्रमित हो भयभीत भी हो

गया। वह पुनः वन में गया और पुनः गाँव में आया। इस प्रकार बहुत बार उसे ऐसा करते हुए पाया। परन्तु उसे भेद कुछ समझ न आया। वह सोचने लगा कि दो बालक एक रूप के कैसे हो सकते हैं ? अन्त में चकित व खिन्न हुए उसने नगर के सब लोगों को बुलाकर इकट्ठा किया और अपने पुत्र को वहाँ गाँव में खेलते दिखाया और फिर उनको लेकर वह वन में गया और वहाँ भी सभी ने उसे उसी रूप में देखा कि लड़का वृक्ष के नीचे सोया हुआ है और उसके मुख पर फन फैलाए एक श्वेत सर्प छाया कर रहा है। उसे देख लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा। वे सोचने लगे कि हो न हो, यह कोई सिद्ध पुरुष है और हमारा पुत्र बनकर अपनी माया दिखा रहा है। इसीलिए इसने दो रूप धारण कर लिए हैं। जैसे शेषशायी विष्णु अपना लीलामय शरीर धारण करके प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही मस्त भी एक शरीर से खेल के द्वारा मित्र बालकों का आनन्द बढ़ा रहा है और दूसरे शरीर से यहाँ जंगल में सो रहा है। इसके संग से तो यह वट वृक्ष भी धन्य हो गया है। यह मस्त अणिमा आदि सिद्धियों से विभूषित मायी परमात्मा का अंश प्रतीत होता है क्योंकि मायी अंश अपने भक्तों को समय–समय पर अपना रूप दिखलाया करता है। फिर नागरिक हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ ! आपकी माया को बड़े–बड़े पण्डितों (विद्वानों) ने भी नहीं

जाना और जिस पर आपकी कृपा हो जाती है, वह भव–सागर से पार उतर जाता है।

इस प्रकार की उन लोगों की स्तुति सुनकर वह सर्प वहाँ से अन्तर्धान हो गया। इसे देख लोग चकित रह गए। फिर सर्प के चले जाने पर नगरवासी मस्त के पास गए और उन्होंने देखा कि बालक सोकर उठा हुआ है। उसके शरीर पर किसी प्रकार का विष का प्रभाव भी नहीं है। फिर लोग शीघ्र ही नगर में आए और मस्त को पुनः वहाँ भी मित्रमण्डली के साथ खेलते पाया। वे लोग सबला को पुनः कहने लगे कि यह तुम्हारा पुत्र स्वयं शिव है और यही तुम्हारे सब प्रकार के धन की वृद्धि (बढ़ोतरी) तथा रक्षा कर रहा है। यह निःसन्देह सर्पभूषण से भूषित विष्णु अथवा शिव अथवा अनन्त ब्रह्माण्ड फलवाला अक्षय वट है क्योंकि इस प्रकार की विलक्षण घटनाओं से युक्त कोई सिद्ध अथवा देवता ही हो सकता है अन्यथा मनुष्यमात्र का ऐसा विचित्र चरित्र नहीं हो सकता। इस प्रकार वे सब लोग अपने–अपने घर चले गए। बालक मस्त भी अपने पिता के साथ घर आगया।

तब पुरवासियों ने उसकी माता के सामने सर्प की गाथा सुनाई और मस्त की सिद्धि व शिवरूपता को प्रकट किया क्योंकि संसार में सिद्ध कोई विरले ही होते हैं। वे बालरूप

अथवा किसी भी रूप में भूतल पर हमेशा ही विचरण करते रहते हैं परन्तु उनका भेद कोई नहीं जान पाता। इस पृथ्वी पर वस्तुतः सिद्धों का अभाव नहीं है परन्तु दर्शन तभी होता है, जब भाग्योदय होता है और भूतल पर ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ पुण्यभूमि न हो, ऐसी पुण्यभूमि नहीं है जिसमें देवता न रहते हों अर्थात् सब जगह देवता और सिद्ध पुरुष साथ–साथ निवास करते हैं परन्तु उन्हें कोई–कोई ही जान पाता है।

इस प्रकार अनेक प्रकार से उनकी महिमा का बखान करते हुए लोग दिन–रात उस बालक का सम्मान करने लगे।

परब्रह्म का यह बालरूप चरित अत्यन्त सुख देनेवाला है। इसे पढ़ने अथवा सुनने मात्र से ही मनुष्य के सब प्रकार के दोष मिट जाते हैं और उसे भवसागर के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है तथा अन्त में वह शान्त हो जाता है।

।। श्रीमस्तनाथचरित में मस्तनाथजी की बाल-लीला नामक दूसरा अध्याय समाप्त।।

तीसरा अध्याय

जो अगम एवं अगोचर है तथा घट–घट में व्याप्त है और सबकी सृष्टि करता है उस परब्रह्म को मैं नित्य नमन करती हूँ।

जिसने अपने योगबल से एक तूंबी दूध से सारी बारात को तृप्त कर दिया और वर्षा न होने पर वर्षा कराकर दैवी सिद्धि दिखाई ऐसे साक्षात् शिवस्वरूप विलक्षण चरित्र वाले श्री बाबा मस्तनाथजी की मैं कोटि–कोटि वन्दना करती हूँ।

बारह वर्ष की आयु होने पर मस्त ने वैराग्य में मन लगाया और घर तथा अन्य धन–सम्पत्तियों में भी वैराग्य दिखाने लगे अर्थात् उनके मन को घर–सम्पत्ति नहीं भाती थी। अतः वे जंगलों में बड़े–बड़े पर्वतों की गुफाओं में, नदियों व सरोवरों के किनारों पर तथा मन्दिरों में अपनी इच्छा से ब्रह्मचारी रहते हुए विचरने लगे।

एक दिन जंगल में धेनु (गाय) चराने गए। वहाँ उसे ग्वाल बालक मिले। वे मस्त से कहने लगे कि आओ ! आपस में मिलकर गाएँ चराते हैं और फिर अनेक प्रकार के खेल

खेलेंगे। उनसे सहमत होते हुए मस्त भी कहने लगे कि पहले गौओं को एक जगह इकट्ठी कर लेते हैं, नहीं तो वे दूर चली जायेंगी। फिर दो दल बनाकर खेलेंगे। भक्तों का हित चाहने वाले, दयालु, सर्वशक्तिमान् मस्त ने उनके कथन की मान–मर्यादा रखने के लिए वैसा ही किया अर्थात् बालकों के साथ खेलने लगे। खेलते–खेलते उनमें से एक सयाना (समझदार) पाली कहने लगा कि इस समय दोपहर का समय है, सूर्य अपने प्रचण्ड तेज से सबको तपा रहा है। जैसे–गर्मी के कारण पृथ्वी तप रही है, वायु गर्म हो रहा है तथा घोसलों में बैठे हुए तोतों के बच्चे भी गर्मी से संतप्त हो रहे हैं। गाएँ और उनके बछड़े सभी प्यास से व्याकुल हैं तथा यहाँ पर पानी का भी कोई साधन नहीं है अतः सब मिलकर गाँव लौट चलते हैं और वहाँ ठण्डा–ठण्डा पानी पीकर अपनी तथा पशुओं की प्यास बुझाते हैं। पाली की बात सुनकर मस्त ने कहा कि मेरी गाएँ इस समय जंगल में हैं, अभी गाँव जाने का समय नहीं है इसलिए मैं नही जाऊँगा। जंगल में क्या पशुओं को जल नहीं मिल सकता ? हम गौओं के हितैषी हैं, उनकी प्यास को दूर कर देंगे और यहाँ जल ही जल कर देंगे। हम यहीं विश्राम करेंगे। मस्त की बात सुनकर पाली कहने लगा कि तुम बालक हो, पागल

की तरह बातें करते हो। मैंने सारे जंगल को अच्छी तरह से देखा हुआ है कहीं पर भी पानी की एक बूँद भी नहीं है। जंगल में सारी गुफा, तालाब, नदी बिल्कुल सूखे पड़े हैं। रास्ते में सब वृक्ष तथा लताओं को भी तुमने देख ही लिया है, सब सूखे खड़े हुए हैं, किसी में भी पत्ते तक नहीं हैं और यहाँ तक कि न ही आकाश में कहीं मेघ का नामोनिशान है। यह कहकर सभी ग्वाले घर की ओर चल पड़े परन्तु मार्ग में कुछ दूर जाने पर मेघों ने आकाश को ढाँप लिया अर्थात् मेघ उमड़–उमड़ कर आने लगे, विद्युत् चमकने लगी, वर्षा होने लगी। थोड़े ही समय में छोटी–छोटी नदियाँ भर गईं, और सब सरोवर जल से भर गए तथा ग्वाले भी बहुत खुश हो गए। क्षणभर में ही चातक तृप्त हो गए, मोर केका एवं नृत्य करने लगे तथा पृथ्वी सब ओर से गन्ध से युक्त हो गई। गौ, बछड़े तथा ग्वाले सभी ने भर पेट पानी पिया और प्रसन्न होकर गीत गाने लगे। जिनकी आज्ञा से मेघ जल बरसा रहा है, यह सब योग की महिमा है, स्वयं मस्त साक्षात् शिवस्वरूप हैं–यह कहते हुए वे गाँव की ओर लौट पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने लोगों के मध्य कहा कि मस्त ने योग से संसार को जल से खूब भर दिया है, प्यास से व्याकुल हमारी एवं गायों की रक्षा की है। तब गाँव के अन्य

लोग भी पूछने आए। पालियों ने तब सारा हाल सुनाया। उस वृत्तान्त को सुनकर सभी हैरान हो गए और मस्त के योग की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह बालक होता हुआ भी संन्यासी और सबका गुरु है। यह जन्म कर्मों से न जानने योग्य स्वयं योगीन्द्र शिव है। हे सबला ! तुम्हारा जन्म सफल हुआ जो तुम्हारे घर ऐसे बालक का आगमन हुआ।

फिर किसी अन्य दिन मस्त के तत्त्व को जानने के लिए गोप बालक इकट्ठे होकर गोष्ठी करने लगे कि कल एक साथ वन में धेनु चरायेंगे और दिन भर कहीं नहीं जायेंगे। दूसरे दिन सवेरे गोप मस्त को लेकर वन में चले गए और किलकारियाँ मारते हुए गेंद आदि खेल खेलने लगे। दूसरा पहर होते ही उन बालकों को प्यास लगी। वे मस्त को कहने लगे कि जरा भी पानी नहीं है, धूप बहुत सता रही है। इस बात को सुनकर मस्त ने सोचा कि आज इन्हें हितकारक एवं प्यास को शान्त करने वाला दूध पिलाना चाहिए। ऐसा विचार कर मस्त ने एक गौ को बुलाया और उससे दूध निकाला और सब पालियों को बुलाकर अमृत के समान मीठा दूध उन सबको पिलाने लगे।

गौ का मधुर दूध पी–पीकर वे आनन्दित हो मस्त की कीर्ति का गुणगान करने लगे।

उसी समय विवाह करने के लिए एक बारात वहाँ से गुजर रही थी। उसे भी बुलाकर मस्त ने अपनी सिद्धि से उत्पन्न वही दूध पिलाया। तब प्रसन्न हो वे बाराती पूछने लगे कि तुम कौन जाति के हो और किसका तू बालक है जो परमार्थ में लगा हुआ है। एक छोटे से पात्र के दूध से तूने सभी को तृप्त कर दिया है। तब बालकों ने कहा कि यह रैवारी जाति का है। इसका नाम मस्त है तथा पिता का नाम सबला है और यह केसरिहट्ट नगर में रहता है।

इस प्रकार उसके विषय में सुनकर व उसके इस अद्‌भुत कृत्य को देखकर वे चकित हुए अपने गन्तव्य स्थल की ओर चले गए।

सायंकाल होते ही सभी पाली मस्त के साथ अपनी गौओं को लेकर उनकी कीर्ति का गान करते हुए अपने–अपने घर चले गए। स्त्री, पुरुष, लड़के और गोपाल सभी गाँव–गाँव में, घर–घर में, सब रास्तों में, गली–गली में, जहाँ–तहाँ उनकी निर्मल कीर्ति का गाने करने लगे कि एक छोटे से पात्र से प्यासी बारात व सभी ग्वालों को छकाकर दूध पिला दिया। इसे सुनकर अपने घर का लड़का समझकर उनके माता–पिता को विश्वास नहीं हुआ किन्तु बारातियों ने विवाहोपरान्त वापिस आकर जब उसका सारा हाल बताया तब उन्हें

विश्वास हो गया। वे बाराती पुनः कहने लगे कि हे सबला ! तुम बड़े भाग्यवान् हो जो कि तुम्हारे घर में जिनकी सिद्धि लोगों में प्रसिद्ध होगई है, ऐसे बालरूपधारी स्वयं भगवान् रहते हैं। उन बारातियों का ऐसा वचन सुनकर सबला ने प्रसन्न हो स्वादिष्ट पदार्थों, जल और आसनों से उन सबका आदर सत्कार किया और फिर बड़े स्नेह से उन्हें विदा किया।

मस्त का इस प्रकार का वृत्तान्त सुनकर वे अपने बालक को श्रेष्ठ सिद्ध समझने लगे और उसे बुलाकर कहने लगे कि तुमको घर का काम–काज करना उचित नहीं है। अब गाएँ चराने मत जाया करो। अपने घर में बैठकर प्रभु का भजन करो।

इस प्रकार वह सबला उस बालक को महापुरुष मानकर उसकी सेवा करने लगा और पहले दिए गए कष्टों के लिए बार–बार उनसे क्षमा याचना करने लगा। मस्त ने भी अपने माता–पिता को खुश करने के लिए क्षमा याचना की क्योंकि माता–पिता से सेवा कराने वाला नरक में गिरता है।

।। श्रीमस्तनाथचरित में दुग्धवर्षा सिद्धि नामक तीसरा अध्याय समाप्त।।

चौथा अध्याय

मैं धर्म के अवतार, सूर्य की भाँति तेजस्वी, अज्ञान को दूर कर ज्ञान के प्रकाश से सबको आलोकित करने वाले, सब प्रकार के विघ्नों को दूर करनेवाले मस्तनाथजी के बाल्यकाल में दिखाए गए अन्य चमत्कारों का भी वर्णन कर रही हूँ जिनको सुनने मात्र से ही प्राणी को बहुत सुख मिलता है और उसकी परमेश्वर में प्रगाढ़ भक्ति हो जाती है, पाप नष्ट हो जाते हैं तथा पुण्य में प्रवृत्ति हो जाती है।

केसरिहट्ट नामक पवित्र नगर में मस्त के घर के समीप एक मिसर नाम का ब्राह्मण रहता था। उसने अतिथियों के बैठने के लिए एक बैठक बनवा रक्खी थी। वह ब्राह्मण परमेश्वर में भक्ति रखने वाला था। उसे वेदों का ज्ञान था। वह समस्त शास्त्रों में प्रवीण व समस्त पुराण–आख्यानों का कुशल वक्ता था। कुलीनता, सुन्दरता एवं सुशीलता आदि गुणों में वह बेजोड़ था। दिन में वेद की पूजा–पाठ, यज्ञ इत्यादि करता था तथा रात्रि में जब सब लोग सो जाते थे, उस समय भी वह दत्तचित्त होकर जपादि के माध्यम से

भगवद्भक्ति में तल्लीन रहता था। नित्य अपनी बैठक में भजन करते हुए उसने एक दिन बड़ी विचित्र लीला देखी। उसने देखा कि सबला का बेटा मस्त बड़ा सुन्दर, तेजस्वी युवक, अवधूत, जटाधारी और भस्म रमाए हुए, सिद्धासन लगाए, ध्यान में लीन है। उसके सामने धूना चेतन है जिसका प्रकाश चारों तरफ फैल रहा है और जिनके पास अनेक शिष्य बैठे हुए हैं। नींद को जीतने वाले उस ब्राह्मण ने प्रतिदिन मस्त के इस चरित को देखा और उसने इस बात को किसी को नहीं बताया क्योंकि भक्ति सबको बताने योग्य नहीं होती। उसके विषय में केवल अधिकारी के सामने ही बताना चाहिए। हररोज ब्राह्मण उस अद्भुत दृश्य को देखता और मन ही मन प्रसन्न एवं चकित होता।

एक दिन उससे नहीं रहा गया। वह मस्त के घर गया और उसने उसके पिता सबला से कहा कि अर्धरात्रि में तुम्हारे घर योगिजन कहाँ से आते हैं। रात में वे धूनि जगाते हैं और दिन में तारों की भाँति तिरोहित हो जाते हैं। अतः मुझे उस धूनी का दर्शन कराओ ताकि मैं पवित्रात्मा हो जाऊँ। मैं कई दिन से आना चाहता था परन्तु घर में काम–काज ऐसा हो गया था जिसकी वज़ह से मैं नहीं आ सका। मिसर की यह बात सुनकर सबला

चकित हुआ और कहने लगा कि हे ब्राह्मण ! आसन ग्रहण कीजिए। आप सच मानिए। यहाँ पर कोई योगिराज नहीं आते और न ही कहीं धूनी जलती है। मुझ पर विश्वास न हो तो स्वयं आँगन में जाकर देख लो। जिन लोगों ने आपको ऐसा कहा है उन्होंने आपके साथ मज़ाक किया है। अब उन्हीं से जाकर पूछो। यहाँ कोई संन्यासी अथवा साधु भी नहीं है। इस वचन को सुनकर ब्राह्मण ने कहा कि मेरे साथ किसी ने मज़ाक नहीं किया अपितु मैंने तो इस दृश्य को स्वयं अपनी आँखों से देखा है क्योंकि मैं देव–पूजा और जप करने के लिए रात में जागता रहता हूँ। तुम्हारे घर में हर रोज योगी मेरी आँखों के सामने धूनी जलाते हैं। मुझे किसी प्रकार का भ्रम भी नहीं है और न ही किसी प्रकार का नेत्र–रोग है। ऐसा कहकर वह ब्राह्मण अपने घर लौट गया। अगले रोज अपनी बात को सच्ची करने के लिए उसने अपने पड़ोसियों को बुलाकर वह दृश्य दिखाया। जो ब्राह्मण देखता था वही उन लोगों ने भी देखा कि धूनी तपने वाले बहुत से योगिजन सबला के घर में मस्त के चारों ओर बैठे हुए हैं। प्रातः यह बात धीरे–धीरे सभी लोगों में फैल गई। सभी इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर चकित हो गए। सबला ने ब्राह्मण को जो यह कहा था कि हमारे घर कोई योगी

नहीं आते हैं; अपनी इस बात को लोगों द्वारा झूठी सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ और वह दुःखी होकर ब्राह्मण से कहने लगा कि मैं सच्चा हूँ। अतः आज जब मैं स्वयं अपनी आँखों से धूनी तपने वालों को अपने घर में देख लूँगा तभी तुम्हारी बात को सच्चा मानूँगा। यह कहकर सबला अपने घर चला गया। फिर आधी रात में ब्राह्मण ने उसे बुलाकर वह सब चरित दिखाया और अपनी बात को सत्य सिद्ध कर दिया। ब्राह्मण ने कहा कि मैंने जो तुम्हें बताया था वह बात तुमने नहीं मानी। अब तो तुम्हारे मायावी पुत्र की करतूत सत्य हो गई है। यह नित्य अपनी विशाल सिद्धि को दिखा रहा है। तू मूर्खता के वशीभूत होकर नहीं मानता धनी, गुणी, और सदा स्वाभिमानी रहना आदि गुण पिता और पुत्र में समान होते हैं परन्तु सिद्ध पुत्र ईश्वर की तरह अधिक शक्तिशाली माना जाता है इसीलिए इसको औरों के पुत्रों की भाँति मामूली मत समझ। सबला उस दृश्य को देख, सुनकर अपने घर आ गया और अब उसे निश्चय हो गया कि उसके ही घर में प्रतिदिन यह अद्भुत लीला होती है।

अपने पुत्र का वह अद्भुत तेज एवं उसका अलौकिक शरीर–लावण्य देखकर सबला का भ्रम जाता रहा और वह स्वयं कहने लगा कि रात में मैंने भी अपने ही घर में देवताओं,

गन्धर्वों तथा योगिजनों को देखा है। वहाँ सभी ग्रामवासियों को बुलाकर यह सब हाल सुना दिया परन्तु उसके आँगन में अब भी धूनी की आग का कोई नामो–निशान नहीं था।

तब पिता ने पुत्र को बुलाकर अपनी गोद में बिठाकर बहुत प्यार करते हुए समझा कर कहा कि हे पुत्र ! मेरी बात ध्यान से सुनो। मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। अपने घर में नित्य अद्‌भुत लीला होती है जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। तनिक तुम उसका रहस्य बताओ। तब पुत्र ने कहा कि हे पिता ! हम तो अज्ञानी बालक हैं। यह कैसी माया है ? इसके विषय में तो कोई विद्वान् जाने अथवा जगत् का स्वामी परमेश्वर जाने अथवा कोई सिद्ध पुरुष जाने। मुझ जैसे बालक की इस विषय में क्या पहुँच अर्थात् इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता। पुत्र के इस वचन को सुनकर सबला भय एवं चिन्ता से दुःखी हो गया और चकित हो यह विचार करने लगा कि यह कोई देवता अथवा सिद्ध प्रतीत होता है। यह निश्चय ही कोई साक्षात् शिव अथवा गोरक्ष का अवतार है।

।। श्रीमस्तनाथचरित में मस्तनाथजी की रात्रिलीला वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त।।

पाँचवाँ अध्याय

वह सबका नियन्ता रुद्र एक होता हुआ भी अनेक शरीर धारण कर लेता है वही पूर्वकाल में गोरक्ष नाम से विख्यात हुआ और वही अब शरीर धारण कर मस्त नाम से जगत् में अपनी लीला दिखा रहा है। उसने अपनी लीलाएँ दिखाते हुए भी राम एवं कृष्ण की भाँति कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। जिस प्रकार महादेव की पूजा करने से श्रीरामचन्द्र का और ब्राह्मणों (सुदामा आदि) का सत्कार करने से श्रीकृष्ण का ईश्वरपन कम नहीं हुआ अर्थात् संदिग्ध नहीं हुआ, उसी प्रकार मस्त द्वारा समाज की सेवा किए जाने से उनका ऐश्वर्यत्व क्षीण नहीं हुआ। अतः उन्होंने अपने सम्प्रदाय की मर्यादाओं का पालन करते हुए स्वयं सिद्ध होते हुए भी गुरु धारण किया और फिर सभ्य समाज को धर्म के मार्ग पर चलना सिखाया।

सबला ने एक बार गाँव के लोगों को बुलाकर कहा कि गुरु गोरक्षनाथ जी की कृपा से इस पुत्र को पाए हुए बारह वर्ष हो गए हैं। सभी लोगों ने इसके पवित्र चरित को जान

ही लिया है। वह मेघ बरसाने की सिद्धि और एक ही पात्र के दूध से समस्त ग्वालों एवं बारातियों को तृप्त करने की घटना तुम सबने पालियों के मुख से सुन ही ली है और जिस दिन से मैंने मिसर नामक ब्राह्मण के कहने से जो इसकी लोक–क्रीड़ा देखी है, उसी दिन से मेरे मन में भय एवं शंका घर कर रही है कि यह बालक घर नहीं रहेगा, यह निश्चित ही घर छोड़कर जायेगा क्योंकि इसका आचरण साधुओं जैसा है। यह एक वन से दूसरे वन में भिक्षुक व उन्मत्त की भाँति वस्त्र एवं विवेक रहित हुआ घूमता रहता है। अतः मैं सोचता हूँ कि इसे किसी योग्य सिद्ध गुरु को ही सौंप देना चाहिए। इसलिए आप सब भी परस्पर विचारकर मुझे सलाह दें कि अब इस विषय में क्या करना चाहिए?

इस बात को सुनकर सभी ने एकमत से विचारकर कहा कि गोरक्षनाथ जी की कृपा से प्राप्त हुए इस बालक को अब किसी योगी को ही सौंप देना चाहिए। ऐसा विचारकर सभी नगर के लोगों व उसके माता–पिता ने बहुत सारे महात्माओं को ढूंढा परन्तु उसकी अद्‌भुत लीलाओं के विषय में सुनकर सभी ने उस बालक का गुरु बनने से इन्कार कर दिया। जब कोई गुरु नहीं मिला तो सब लौटकर घर आने लगे। तब मार्ग में उन्हें सर्वगुणसम्पन्न

आईपंथ के आचार्य गुरु नरमाईनाथजी के दर्शन हुए। वे ब्रह्मवेत्ता, यतियों में अग्रगण्य, कामनारहित, वैदिक सिद्धान्त के ज्ञाता एवं योग के तत्त्व को जाननेवाले थे। वे जटाजूट व शरीर में भस्म रमाए हुए, कानों में कुण्डलों से विभूषित, कण्ठ में सेली–सींगी धारण किए हुए ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान हो रहे थे। ऐसे महात्मा के दर्शन होते ही सभी ने उन्हें नतमस्तक हो प्रणाम किया और सब हाल सुनाकर मस्त को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करने की विनती की। तब नरमाईनाथजी ने कहा कि यतियों को दूसरे के साथ वास करने से क्राम–क्रोधादि हो जाते हैं। काम–क्रोधादि से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से प्राणी (मनुष्य) का सर्वनाश हो जाता है। अतः मुझे दूसरे का संग नहीं भाता। मैं तो अकेला ही विचरण करता हूँ। तब उनके वचन सुनकर भी बालक मस्त ने उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे प्रभो ! मुझ शिष्य पर कृपा कीजिए। आपकी आज्ञा से मैं बड़े प्रेम से नाथों की सेवा करूंगा। कृपया मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लो। मेरा परित्याग मत करो। हे शरणागतवत्सल ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, अतः दीनों के कष्टों को दूर करनेवाले आपके सिवाय अब मैं किसकी

शरण में जाऊँ। संसार सागर से पार उतारने वाले, जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त कराने वाले, ब्रह्मपद की प्राप्ति कराने वाले सद्‌गुरु आप ही हैं। अतः अब मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।

इस प्रकार अत्यन्त आग्रह करने पर मस्त के भक्तिभाव से द्रवित हो शरणागतवत्सल नरमाईनाथजी प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद देकर संन्यासमार्ग का उपदेश देने लगे–जिसने मानव जन्म पाकर भी भजन नहीं किया, उसको धिक्कार है क्योंकि वह सुमार्ग को पाकर भी कुमार्ग में जा गिरा है। मनुष्य का जीवन भक्ति से ही शोभित होता है, भक्ति वैराग्य से शोभित होती है और वैराग्य **विषयों में अनासक्त**[1] होने से शोभित होता है। जो आत्मोद्धार नहीं करता वह व्यक्ति मूर्ख एवं आत्मघाती कहलाता है और आत्मघात के समान दूसरा पाप नहीं है। अज्ञान रौरव नामक नरक के समान अन्धकारमय है, उससे बढ़कर कोई दूसरा बन्धन नहीं है और उस अज्ञान के दूर होने से ही मोक्षरूप सुख मिलता है। वह ज्ञान नाथजी[2] की चरणसेवा और संग से तथा अपने सम्प्रदाय के नियम और आचार के पालन

---

१. भोगों में प्रेम न रखना। २. भगवान्

करने से ही मिलता है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सा मोक्ष–सम्बन्धी उपदेश देकर नाथजी ने उसे अपनी सेवा में संलग्न कर लिया। फिर उसके माता–पिता को उनके घर भेज दिया।

कुछ दिन बालक को नाथ ने अपनी सेवा में रक्खा और फिर शुभ महीना, शुभ पक्ष, शुभ तिथि और शुभ वार (दिन) देखकर अच्छे ग्रहों से युक्त शुभ लग्न में उस बालक का शिखा (चोटी) सहित मुण्डन करके मन्त्रदीक्षा देकर १७८८ (1788) विक्रम सम्वत् में अपना शिष्य बना लिया। गुरु नरमाईनाथजी आईपंथ के थे। इसी कारण उस सम्प्रदाय के अनुसार उस बालक मस्त का नाम भी 'मस्ताई' रक्खा दिया तथा अपने सम्प्रदाय के चिह्नस्वरूप उसके कानों में कुण्डल पहना दिए तथा गले में सींगी तथा सेली धारण करवा दी और तदनन्तर नाथ पदवी भी प्रदान कर दी।

मस्ताई ने गुरु के सामने जो प्रतिज्ञा की थी उसे उसने अनेक प्रकार की सेवाविधि दिखाकर पूरा कर दिया। उन्हें दण्ड से शिक्षा की कभी आवश्यकता नहीं हुई अपितु वे स्वभाव से ही गुरु की सेवा करने लगे।

सवेरे अपने आचार्य के उठने के बाद जितना आवश्यक क्रिया–कलाप, पूजन, मंत्रजाप आदि होता था उस सबको उनसे पहले उठकर ही कर देते थे। जैसे धूलि उड़कर गुरु के शरीर पर न लगे इसीलिए गुरु के निवासस्थान को बहुत अच्छी तरह साफ कर देते थे और गुरु के स्नानादि के लिए स्वयं अपने हाथों से कूप से जल लाते थे तथा अपनी छोटी सी तुम्बी से थोड़ा–थोड़ा जल ला–लाकर अकेले ही बड़े परिश्रम से गुरु के जलपात्र को भी भर देते थे। इस प्रकार स्नानादि से लेकर पूजाविधिपर्यन्त सब काम गुरुजी की आज्ञा से पहले ही कर देते थे।

एक बार सेवा करते–करते मस्ताई के मन में आया कि धनी लोगों के पास पूजा करने के पात्र सोने–चाँदी के होते हैं परन्तु हमारे गुरु के पास नहीं हैं, ऐसा विचारकर उन्होंने गुरुभक्ति से प्रेरित होकर सब पात्र मणि–माणिक्यादि से जड़े हुए सोने तथा चाँदी के बना दिए। रात्रि में उन्हें अपनी माया से लुप्त कर देते और सवेरे होते ही गुरु के उठते ही सब पात्र फिर सोने के हो जाते थे। तब गुरुजी कल्पना करते थे कि किसी भक्त ने दिए होंगे। ऐसी कल्पना गुरु के हृदय में उठते ही मस्ताई के संकल्पमात्र से ही भक्तजन

आकर उपस्थित हो जाते थे। आज भी मस्तनाथजी के प्रिय शिष्य रणपत–मानधाता के धूने की गद्दी पर बैठे हुए साधु के संकल्पमात्र से ही भक्तजन अभीष्ट वस्तु लेकर तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं।

इसी प्रकार एक बार रात्रि के समय गुरु के सोते समय दीपक का बहुत अधिक प्रकाश हो गया। तब गुरुदेव ने सोचा कि क्या मेरे निवास स्थल पर सूर्य उतर आया है अथवा मेरे स्थान को जलाने के लिए साक्षात् अग्निदेव ही देदीप्यमान हो रहे हैं अथवा क्या मेरा इष्ट देव प्रसन्न होकर आया है। संभवतः उसी का यह प्रकाश है। जब वह प्रकाश बहुत देर तक वैसा ही रहा तब गुरुदेव ने शिष्य से पूछा कि हे वत्स ! बताइए, दीपक का यह प्रकाश इतना क्यों बढ़ रहा है। तब मस्ताई बोले कि हे गुरुवर ! यह सब आपकी ही कृपा शक्ति से सम्पादित हुआ है अर्थात् जो कुछ भी अधिक प्रकाश दिखाई दिया है वह आपकी अपनी योगशक्ति के कारण है उसमें मेरा कुछ भी योगदान नहीं है। गुरु ने जब शिष्य के ये वचन सुने तो उनका भ्रम दूर हो गया और उन्होंने प्रसन्न होकर शिष्य को वरदान भी दिया कि तू ईश्वर के समान होकर अपने सम्प्रदाय तथा जगत् में अपना प्रभुत्व

(स्वामित्व) स्थापित करेगा। जो तुम्हारे समान शुद्ध आचरण करते हुए गुरु की सेवा–विधि को नहीं जानते और जिनका हृदय कपट से भरा हुआ है, गुरु का थोड़ा उपकार करके उसे स्वयं बहुत अधिक मानने वाले, वाणी से भी कभी मधुरभाषण न करने वाले, सामने प्रिय बोलने वाले और पीठ पीछे गुरु की निन्दा में लगे हुए और अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए छिपकर गुरु का तिरस्कार (अपमान) करने वाले, गुरु की सेवा करने से मैं छोटा कहलाऊँगा ऐसा सोचने वाले तथा गुरु में मत–वैभिन्य रखने वाले शिष्यगण पृथ्वी को कलंकित करने वाले कौवे ही हैं, शिष्य कदापि नहीं और पृथ्वी पर बोझ हैं। इसके विपरीत सेवा करने वाला शिष्य साक्षात् देवतास्वरूप होता है और वह गुरु की सेवा से सुख, यश और यहाँ तक कि सभी शास्त्रों का मर्म एवं योगसाधना से उत्पन्न आत्म–साक्षात्कार इन सबको प्राप्त कर लेता है। अतः आत्मोन्नति और धन इत्यादि की अभिलाषा रखने वाले व्यक्तियों को सब कुछ गुरु की सेवा से ही उपलब्ध हो सकता है। जहाँ पर गोसेवा, धैर्य, सामर्थ्य, भक्ति और अपने सम्मान का ख्याल ये गुण नहीं हैं, वह स्थल मरुस्थल की भाँति नीरस है। वहाँ किसी प्रकार के सुख की अनुभूति हो ही नहीं सकती अर्थात् जिस प्रकार

मरुस्थल में रहने वाले किसी भी प्राणी को शान्ति नहीं मिलती, उसी प्रकार ऐसे देश में रहने वाले प्राणियों को भी किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिलती और शान्ति के अभाव में वे निरन्तर राग–द्वेष से युक्त हुए कलह में ही जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार गुरु की सब प्रकार (तन, मन, धन) से सेवा करते हुए बारह वर्ष बीत गए और बारह वर्ष तक गुरु की सेवा करने से उसके बारह वर्ष सिद्ध हो गए।

मस्ताई जी के इस आख्यान से सभी सत्पुरुषों को यह शिक्षा ले लेनी चाहिए।

।। श्रीमस्तनाथचरित में शिष्य मस्त की गुरुसेवा का वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त।।

छठा अध्याय

एक प्राचीन तीर्थ पृथूदक, जो अब 'पेहवा' नाम से लोगों में जाना जाता है। वहाँ पर किसी समय सरस्वती नदी बहती थी जिसका उल्लेख ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में आता है। माना जाता है कि इसके किनारे पर पिण्डदान एवं श्राद्ध करने से पितरों की अक्षय तृप्ति हो जाती है। किसी समय वर्ष के अन्त में यहाँ पर चैत्र मास की अमावस्या तिथि में अनेक लोगों, विद्वानों एवं महात्माओं का बड़ा भारी मेला लगता था। वहीं पर एक बार मस्तनाथजी भी अपनी शिष्यमण्डली के साथ पहुँच गए और अपने धूने की अग्नि के धुएँ से उस स्थल को धूसर बना दिया। उस नदी के किनारे पर उस समय दूर तक फैले हुए योगियों की मण्डली को देखने की उत्कण्ठा से अनेक श्रद्धालु लोग उनके पास आते और भाँति–भाँति से उनकी पूजा करते थे। उसी समय वहाँ पर बारह पंथ के समस्त योगिजनों का भण्डारा हुआ। तब अनेक साधु मिलकर मस्ताई को बुलाने के लिए गए और उनसे विनम्र प्रार्थना करने लगे कि आप भोजन हेतु हमारे निवास स्थान पर पधारें। उसे सुनकर

मस्ताई सन्त कहने लगे कि मैं आई पंथ का आचार्य हूँ। अतः आप सब बारह पंथ के साधु मिलकर बारह गौ, बारह कम्बल भेंटस्वरूप मुझे पहले दें फिर मुझे निमन्त्रण पर ले जा सकते हैं। उनकी बात सुनकर उन अहंकारी साधुओं ने क्रोध के आवेश में आकर कहा कि हम दर्शनी सन्त हैं और तू मूर्ख औघड़ होकर हमसे भेंट माँगता है ? क्यों पागलों जैसी बातें करता है। तुम सेवक हो, हम सेव्य हैं। तुम्हारे जैसे योगी तन पर भस्म लगाए बहुत से फिरते रहते हैं। यदि तू औघड़ होकर भी कुछ ज्ञान वाला है तो कोई अपनी योगविषयक सिद्धि दिखला। यदि तुमने सिद्धि दिखा दी तो हम तुम्हारी बात मान तुम्हारी पूजा करेंगे और यदि न दिखा सके तो हम तुम्हें कठोर दण्ड देंगे। तब उनके वचन सुनकर मस्ताई सन्त कहने लगे कि तुम कौन सी सिद्धि देखना चाहते हो। तुम मुझे अनादि शिवस्वरूप समझो। धरातल पर कौनसा ऐसा ज्ञानी है जो मेरे तत्त्व को जान सकता है, अज्ञानी एवं अहंकारी लोग यूँ ही सिर पटक–पटक कर मर जाते हैं और मेरे तत्त्व को अन्त समय तक भी नहीं जान पाते। सबका गुरु (नाथ, स्वामी) मैं हूँ। मेरा अनादर करके तुम जीवित भी नहीं रह सकते।

तब तुरन्त ही मस्ताई ने चारों युगों में होने वाले अपने ही स्वरूप (**अवतार**) को धारण करने वाले ब्रह्मचारियों, विरक्तों एवं संसार में लीन रहने वाले प्राणियों के चिह्नों को दिखला दिया अर्थात् चारों युगों में जो उनके ब्रह्मचारी अवतार हुए, विरक्त सन्त हुए एवं गृहस्थ हुए उनको अपने भीतर ही दिखला दिया। फिर बाजीगर की भाँति अनेक प्रकार की वस्तुएँ दिखा दीं। तदनन्तर लोगों द्वारा अपने को बाजीगर कहे जाने पर उन्होंने दिव्य योग दिखाया, जिस प्रकार प्राचीन काल में श्रीकृष्ण ने यशोदा एवं अर्जुन को दिखाया था। मस्ताई जी ने अपना विराट् रूप धारण करके अपने ही उदर (पेट) में नदी, सागर, सात द्वीपों सहित पृथ्वी, सब लोक, सूर्य, तारे, देवता, ग्रह, इन्द्र, मनु इत्यादि अपना विभूति योग सबको दिखला दिया। तब उस अद्‌भुत विराट् रूप को देखकर सब तपस्वी भयभीत एवं चकित होकर उन्हें नमन करने लगे और उस अद्‌भुत कर्म की सब ओर प्रशंसा करने लगे। वे बारह पंथ के सब सन्त यह सुनकर भी क्रोध से कहने लगे कि हमारा आचार्य तो श्री गोरखनाथजी के सिवाय दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। अतः हम दूसरे की पूजा कदापि नहीं करेंगे। उसके गले में नाद भी नहीं है, न कानों में कुण्डल हैं। कलियुग में अनेक प्रकार के कपटी लोग रहते हैं, वह कोई बाजीगर है। जाकर उससे कहो कि हम उसे पूजा

नहीं देते। तपस्वियों ने जैसा कहा था वैसा मस्ताई जी को जाकर कह दिया। उनके ऐसे वचन सुनकर मस्ताई ने कहा कि धिक्कार है ऐसे लोगों को जो लोगों से केवल पूजा लेकर धनवान् हैं परन्तु गुणों की परख नहीं जानते।

तब उन्होंने उन्हें दण्डित करने के लिए मात्राओं से बलपूर्वक रेचक करके छोड़ दिया जिस कारण वायु का बड़ा भारी तूफान आ गया। धुंध ने तत्क्षण ही अन्तरिक्ष को ढांप लिया और चारों दिशाओं में घोर अन्धेरा छा गया। सारे मनुष्य दिशाएँ भूल गए और किंकर्त्तव्यविमूढ हो जड़वत् वहीं खड़े रहे। वायु ने वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया, मेघ भीषण गर्जना करने लगे। फिर कुम्भक प्राणायाम द्वारा मस्ताई ने वायु को रोक दिया और सूर्यनाड़ी (इडा) द्वारा सूर्य के अंशों को बढ़ा दिया, जिस कारण सूर्य चारों तरफ मानो अंगारों की वर्षा करने लगा। तब प्राणी धूप से अत्यन्त संतप्त हो छाया ढूंढने लगे और वे व्याकुल हो उनके पास जाकर विनम्र प्रार्थना करने लगे। तब बाबा ने चन्द्रनाड़ी (पिंगला) से चन्द्रमा के अंशों को खींचकर सूर्य के भीषण ताप को शान्त कर सभी निर्दोष प्राणियों को पुनः सुखी कर दिया। परन्तु बाबा ने देखा कि इतने पर भी विरक्त साधुओं का घमण्ड नहीं टूटा है तब उन्होंने ऐसी माया दिखाई कि दो–दो साधु अपने आप ही जीते–जी समाधि लेने लगे। इसी तरीके

से लगभग चौबीस साधुओं ने समाधि ली। उन्हें देखकर एक बालक योगी भी समाधि लेने की हठ करने लगा। तब उसके गुरु ने उसकी कलाई पकड़कर उसे रोका और समझाया कि ऐसा करने से हमारे पंथ का सिर नीचा हो जायेगा। गुरु के वचन सुनकर उस बालक ने योगी से कहा कि मस्ताई के सामने तुम्हारा पंथ कोई चीज नहीं है। उनकी जो इच्छा है, वही होगा। जब बालक किसी तरह नहीं माना तब उसने बालक को जबरदस्ती पकड़कर मस्ताई के चरणों में गिरा दिया और कहा कि ये बालक मुझे बहुत प्यारा है। कृपा करके इसके प्राण बचा लो। उस पर बाबा प्रसन्न हो गए और उसे कहा कि तुम मेरे प्रिय हो। तुम बड़े होकर ज्ञानी बनोगे। उस वचन को सुनते ही बालक के हृदय में अपने आप ज्ञान उत्पन्न हो गया और समाधि (मरने) से उसका मन हट गया। इस चरित को देखकर सबको विश्वास हो गया कि मस्ताई ईश्वर तुल्य है, उन्हीं की इच्छा से ये सब हो रहा था। उनसे प्रार्थना कर क्षमा माँगो। तब उन्होंने मिलकर बाबा को भेंट देकर क्षमायाचना की। बाबा ने भी प्रसन्न होकर उन्हें ज्ञानी होने का आशीर्वाद दिया और उपदेश भी दिया कि मेरा वास्तविक स्वरूप अद्वैत है किन्तु सांसारिक दृष्टि से भेद है अर्थात् शरीर के सम्बन्ध से भेद है। जब शरीर ही अनित्य (हमेशा न रहने वाला) है तो शरीर से सम्बन्ध होने के कारण वह

भेद भी अवश्य ही अनित्य है परन्तु जो तत्त्व को जानने वाले (तत्त्ववेत्ता) नहीं हैं वे माया के कारण अज्ञान से मोहित हो जाते हैं। अतः बारह पंथों के भेद किसी प्रकार से नहीं हैं। सबका उपास्य (ध्येय) एक ही है। अतः परस्पर विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि आपस का विरोध अपने कुल का विनाश कर देता है।

इस प्रकार ज्ञान और विज्ञान के तत्त्व के विषय में आदेश एवं उपदेश देने के कारण आईपंथ में नाथसंज्ञा मस्ताई जी से आरम्भ हुई। उनसे पहले सबके नाम के पीछे 'आई' संज्ञा जोड़ी जाती थी। जैसे नरमाई, मस्ताई आदि।

नाथ का शाब्दिक अर्थ 'स्वामी' है। उस समय सबके सामने सब प्रकार का ऐश्वर्य एवं सामर्थ्य तथा नियन्त्रक शक्ति दिखाने के कारण ही मस्ताई को 'नाथ' नाम से जाना जाने लगा और उस घटना के पश्चात् इस सम्प्रदाय के योगियों के नामों के पीछे 'नाथ' पद जोड़ने की परिपाटी चल पड़ी।

।। श्रीमस्तनाथचरित में आईपंथ में नाथसंज्ञा का अवतारिकरण एवं सिद्धि-दर्शन (विभूतियोग दर्शन) नामक छठा अध्याय समाप्त।।

सातवाँ अध्याय

दुष्टों को दण्ड देनेवाले, सज्जनों को भवसागर से पार उतारनेवाले, नास्तिकों के हृदय में भी अपने अलौकिक चरित से आस्तिक भाव भर देनेवाले शिवस्वरूप गुरु मस्तनाथजी को मैं निरन्तर नमन करती हूँ।

जैसे हिमालय की उपत्यकाओं (आसपास के पर्वतीय प्रदेश) में जंगली जन्तु होते हैं, उसी प्रकार बोहरग्राम के समीप प्राचीन समय में जंगली जन्तुओं से खचाखच भरा हुआ जंगल था, जिसकी गुफाएँ बलिष्ठ सिंहों की गर्जनाओं से, बाघों की दहाड़ से तथा एक साथ मिले हुए (गीदड़ों इत्यादि) पशुओं की ऊँची ध्वनि से गूँज उठती थीं। कहीं पर विशाल वृक्ष वन की शोभा बढ़ाते थे जिन पर अनेक पुष्पों से लदी हुई लताएँ झूमती नज़र आती थी। कुदरती पके हुए नाना प्रकार के कन्द–मूल, सरोवर, कुएँ आदि मौजूद थे और अनेक प्रकार के पक्षियों के कलरव मनुष्यों के मन को आकृष्ट कर लेते थे। हिरण सिंहों के साथ मैत्री करने के लिए आते थे और सिंह हिरणों के साथ मित्रता करने जाते थे। उसी वन में एक बार सिद्ध चौरंगीनाथ तपस्या करने के लिए ठहरे। नाना प्रकार के कन्द–मूलों से

युक्त होने के कारण सुखदायी, विघ्नों से रहित, गुफा तथा लताकुञ्जोंवाले उस निर्जन वन को देखकर सिद्ध चौरंगीनाथ ने वहीं पर बारह वर्ष तक तप करने के लिए और अनादि ब्रह्म का ध्यान करने के लिए अपने मन को स्थिर किया और तदनन्तर कठोर तपस्या की। उनके कठोर तप को देखकर देव, दानव व मनुष्य सभी मुग्ध होगए। तप की शक्ति के प्रभाव से वे चौरंगीनाथ सिद्ध होगए।

एक बार मस्तनाथजी इधर–उधर घूमते हुए उस जंगल में आगए और उसी तपोभूमि पर वे धूनी जलाकर पंचाग्नि तप करने लगे। थोड़े ही समय में उनका यश समस्त दिशाओं में फैल गया। उनकी कठोर तपस्या से आकृष्ट होकर भक्तजन स्वयं उनके पास जाने की इच्छा करने लगे परन्तु हिंसक जन्तुओं से भरे हुए उस जंगल में भय के कारण कोई नहीं जा पाता था। एक दिन उन भक्तजनों ने गोष्ठी भी की कि ऐसे ब्रह्मतेजस्वी कभी–कभार संसार में आते हैं और भक्तजन सदैव उनका अनुसरण किया करते हैं। अतः कुछ भी हो, हम सब मिलकर उनके दर्शन करने के लिए चलेंगे–ऐसा विचार कर गिरधर नम्बरदार नगरवासियों को साथ लेकर मन में शंकित (भयभीत) हुआ मस्तनाथजी को देखने के लिए उस जंगल में गया। उन्होंने वहाँ पर शेर, बाघ, हाथी, कबूतर आदि पक्षियों को हर समय

'सोऽहम्' जप में लगे हुए देखा अर्थात् वहाँ पर हिंसक जन्तु और पक्षी तक भी 'सोऽहम्' की ध्वनि निकाल रहे थे। वे प्राणी मस्तनाथजी के चारों तरफ बैठे हुए थे। उनको अपने दर्शन में विघ्नस्वरूप देखकर भय से व्याकुल हुए वे दूर से ही हाथ जोड़कर ऊँचे स्वर में कहने लगे कि हे महात्मन् ! अष्टसिद्धियों के स्वामी ! योगवेत्ता ! आपके होते हुए भी ये हिंसक जन्तु हमें भयभीत कर रहे हैं। यह कैसा आश्चर्य है ? तनिक हम भक्तों पर अनुग्रह करते हुए अपनी इस माया को हटा लो ताकि हम आपके निकट आ सकें। उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर भक्तवत्सल मस्तनाथजी ने अपनी योगशक्ति से उन सबको शान्त कर दिया, और वे वन में चले गए। फिर वह सम्पूर्ण जंगल भी शान्त होगया। तब वे गाँव के लोग बिना किसी भय के उस योगीश्वर के समीप आगए। उन भक्तों ने प्रार्थना की और कहा कि आपकी लीला अपरम्पार है। हम गाँव के रहनेवाले साधारण व्यक्ति उसका वर्णन कहाँ तक कर सकते हैं ? हे दीनवत्सल ! हम दुःखियों का भी दुःख दूर करो। हे महात्मन् ! इन्द्र के क्रोध का कारण हमें मालूम नहीं है। वर्षा नहीं हो रही है, जिस कारण नदी, नाले, सभी सूखे पड़े हैं। जल के अभाव में फसल भी नहीं हो रही है। हमारा जीवन दूभर हो रहा है। आपकी कृपा से प्राणी सुखी हो जायेंगे। हम लोगों के बीच आपकी इस कृपा का संस्तव (प्रशंसा) हमेशा रहेगा यह कहकर लोग चुप होगए।

तदनन्तर ध्यान कर नाथजी ने कहा कि जिस स्थान पर अधर्म अधिक होता है वहाँ देवताओं के नाराज होने के कारण वर्षा नहीं होती। जहाँ धर्म न हो, हिंसा की जाती है, गौ, ब्राह्मण व साधुओं को पीड़ा पहुँचाई जाती है, सत्पात्र को दान नहीं दिया जाता, गरीबों की रक्षा नहीं की जाती, वहाँ मेघ वर्षा करके सम्पत्तियों को नहीं बढ़ाते, अपना मात्र पेट भर लेने से ही क्या देवता तृप्त होते हैं अपितु यज्ञादि करने से ही वे संतुष्ट होते हैं और बदले में प्राणियों का पालन–पोषण करने का यत्न करते हैं। इसे सुनकर लोगों ने कहा कि हम कौन से देवता की उपासना व यज्ञ करें। तब बाबा ने कहा कि यथाशक्ति देवताओं की पूजा करो और हिंसा का परित्याग कर दो। ब्राह्मणों (विद्वानों) का आदर करो और यज्ञ एवं धर्म सब लोग करें। चोरी, अहंकार व कपट आदि का बिल्कुल परित्याग कर दो। नास्तिक होता हुआ भी जो पुरुष संकट के समय में भी देवता, मुनि तथा सिद्धों की सेवा करता है वह भी सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। जिस–जिस का जो सम्प्रदाय है अथवा इष्ट देव है, उस–उस की निर्विघ्न सेवा करने से देवता प्रसन्न हो जाते हैं क्योंकि वही दुर्गा है, वही राम एवं कृष्ण, वही गंगा, वही हनुमान, वही सूर्य है, वही शंकर और वही यह मैं मस्तनाथ हूँ,

जो निराकार होता हुआ भी साकार है, सर्वाकार होता हुआ भी महेश्वर है, अनेक आकारों का आश्रय लेकर भी जो निर्विकार है और उसी से जगत् का साकार रूप उद्भासित हो रहा है।

इस प्रकार नाथजी के श्रुति एवं स्मृति से सम्मत सारगर्भित वचन सुनकर सब प्रसन्न हो गए और उसी समय उन्होंने हिंसा छोड़कर यथाशक्ति धार्मिक कार्य करने की प्रतिज्ञा की। तब महाराज ने कहा कि कल प्रातःकाल की आरती–पूजन करने से पहले ही भारी वर्षा होगी। सिद्ध और ब्राह्मणों के वचनों को देवता कभी झूठा नहीं करते अपितु युगधर्म से तृप्त हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी सत्य का गान करते हैं। नाथजी के इस प्रकार के कथन पर विश्वास कर शान्तचित्त हो सब प्रजाजन अपने–अपने घर जाकर बादलों की प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि के चौथे पहर में सभी ने गाढ़ अन्धकार से आकाश को ढकते हुए उमड़ते मेघ को नीलगिरि के समान देखा और सूर्य उदय से पहले ही मेघ ने एकत्रित किए हुए जल को बरसा दिया। उस वृष्टि से सम्पूर्ण पृथ्वी तृप्त होगई। उस वर्षा की सिद्धि को बोहर गाँव के लोगों ने अपनी आँखों से देखा और वे आज तक भी मस्तनाथजी की स्तुति का

निशिदिन गान करते रहते हैं। उस समय वर्षा से सब दिशाएँ निर्मल होगई। स्त्री, बाल, वृद्ध सभी निर्भय होकर प्रसन्नचित्त से बाबा की महिमा का गान करने लगे और वे चन्दन, पुष्पादि, दीप, वस्त्रादि–भाँति–भाँति की भेंट लेकर उनके पास आने लगे और स्तोत्र–पाठ करने लगे। उस समय गिरधर जाट भी अपने गाँववालों को साथ लेकर पान, फूल, बहुभाँति के मेवे इत्यादि लेकर उनकी सेवा–वन्दना करने लगा।[1] उस समय वेदों में, प्राचीन ग्रन्थों में, पुराण व तन्त्र आदि समस्त शास्त्रों में वन्दित किए गए गोरक्षजी ही साक्षात् (सम्मुख विराजमान) मस्तनाथ जी के रूप में प्रतीत होते थे। इस प्रकार अन्तर्यामी, सब जगह व्याप्त परमेश्वर ही अपने नाना रूपों से लोगों को भाँति–भाँति से मुग्ध करता हुआ श्रीमस्तनाथ रूप से जगत् में विख्यात हुआ।

।। श्रीमस्तनाथचरित में बोहर में वर्षा कराना नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।।

---

१. कहा जाता है कि उस वर्षा से खुश होकर बाद में गाँव वालों ने कुछ भूमि भी मठ को दान मे दी थी। (किंवदन्ती)

आठवाँ अध्याय

जिन मस्तनाथ जी ने उस हरियाणा प्रान्त में निवास करनेवाले लोगों को श्रद्धायुक्त होने तथा अपने कर्त्तव्यपालन का उपदेश दिया था और अपना पावन चरित दिखाया था ऐसे उस योगीन्द्र को योगसाधक नित्य प्रणाम करते हैं और उन्हीं की करुणा दृष्टि से सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

एक बार नाथजी उस हिंस्त्र–पशुओं से भरे हुए बीहड़ जंगल को सुन्दर भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण बनाकर भ्रमण करते हुए अपने इच्छित अन्य प्रदेश की ओर चल पड़े। उस वन में थोड़ी ही दूरी पर हंसादि पक्षियों से शोभायमान तीर्थस्थल एवं नदियों को देखकर वे अतीव प्रसन्न हुए और वहाँ कुछ समय निवास करने हेतु एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। उनका यश पहले ही लोगों तक फैल चुका था। उनकी सिद्धियों से आकृष्ट होकर लोग उनके पास आने लगे। उसी गाँव में एक लंगड़ी निर्धन स्त्री रहती थी। जब उसने भी लोगों से यह खबर सुनी कि एक गुणवान् योगी आए हैं तो वह भी अपने पाँव लेने की इच्छा से

बाबाजी के दर्शन के लिए गिरती–पड़ती चल पड़ी। धूलि से उसका शरीर लिपटा हुआ था। मार्ग में बार–बार बालक उसकी हंसी उड़ाते थे। उस दयनीय अवस्था वाली नारी को अपमानित देखकर बाबा ने कहा कि तुम हिम्मत करके मेरे पास आओ। फिर अपमान करनेवालों को धिक्कारते हुए कहा कि अंगहीन को देखकर तुम लोगों के मन में दुःख होना चाहिए परन्तु तुम तो उलटे उस पर हंस रहे हो। जो ऐसे प्राणी को देखकर हंसता है, वह पाप का भागी होता है।

इस प्रकार के वचनों को सुनकर भी वे पापी लोग हंसते रहे और उस नारी को कहने लगे कि तुम घर लौट जाओ। क्या कभी अपंग को भी पाँव मिल सकते हैं ? परन्तु वह नहीं मानी और उनकी बातों की परवाह किए बिना ही आगे बढ़ती रही क्योंकि नशे में चूर, पागल, बालक, हंसी उड़ानेवालों का, चुप रहनेवालों का तथा निर्मल चित्तवालों का न कोई आत्मीय (अपना) होता है और न ही पराया। इसीलिए इनकी बातों का बुरा भी नहीं मानना चाहिए और मूर्खों, हठी लोगों, बालकों, कुमार्गगामी, नशे में चूर व्यक्तियों के तथा ब्रह्मविद्या के ज्ञाता विद्वानों के सम्पर्क में आने पर चुप रहना ही श्रेयस्कर (कल्याणकारी) होता है।

अतः वह लंगड़ी नारी इन उपहास करनेवाले मूर्खों की हंसी की परवाह न करती हुई श्रीनाथ के पास चली गई और उसने अपने दोनों पैरों की याचना की। नीचे सिर झुकाए हुए वह स्त्री रो पड़ी। उसने कहा कि हे नाथ ! तनिक मेरे कष्टों को देखो ! तुम ही संसार रूपी भवसागर से पार कराने वाले हो। जिसके भीतर जो कष्ट होता है वही उसकी पीड़ा को जानता है, दूसरा नहीं। जिस प्रकार प्रसव में जो कष्ट होता है उसको बांझ स्त्री नहीं जानती। अतः उस स्त्री ने अपना दुःख बताकर उस दुःख से छुटकारा चाहा क्योंकि दूरदर्शी व्यक्ति मोक्ष को छोड़कर पारिवारिक सुख की याचना करता है। उस अभागी की इतनी विनती सुनकर मस्तनाथजी ने अपनी लीला से पास में बैठे हुए एक नाथ साधु को आज्ञा दी कि श्रीकृष्ण की भाँति इसकी कमर में एक लात मारकर इसको पैर दे दो। तब मस्तनाथजी ने अपनी माया से उस स्त्री को पैर देकर उसे कृतार्थ कर दिया।

जो अपनी लीला से लंगड़े को पर्वत पार करा दे और मूर्ख को भी पण्डित बना दे ऐसे मस्तनाथजी को उस नारी ने प्रणाम किया और उनका धन्यवाद करती हुई अपने घर लौट आई। उसे देखने के लिए आस–पास के बहुत से लोग आने लगे। उसके पैरों को देखकर

सभी लोगों को पहले की सुनी हुई सब बातों पर विश्वास हो गया और चकित हुए वे इस बात को आपस में बारम्बार कहने लगे। इस वृत्तान्त को सुनकर आस लगाए एक अन्धा ब्राह्मण का लड़का भी गिरता–पड़ता उस वृद्ध स्त्री के पास पहुंचा और उससे उसका सारा हाल पूछकर विश्वास करता हुआ मार्ग पूछता बाबा के पास जा पहुँचा और उनके पैरों का स्पर्श करके कहने लगा कि मैं आपके यश को सुनकर नेत्रों की इच्छा से यहाँ आया हूँ क्योंकि इस प्रकार के महान् योग वाले, दिशाओं में फैली हुई कीर्ति वाले सद्गुरु के पास उस प्रकार का नेत्रों का याचक मानव क्यों न जाए ? अर्थात् ऐसे असहाय व्यक्ति उस प्रकार के सद्गुरु के पास उम्मीद लेकर अवश्य जाते हैं। बोहर गाँव में निवास करने वाले निर्भय एवं सन्मति वाले उस नाथु के अन्धे पुत्र का वचन सुनकर दयालु मस्तनाथजी ने उसे दोनों नेत्रों में उत्तम दृष्टि प्रदान कर दी क्योंकि योग्य ब्राह्मण (अथवा पात्र) को दिया हुआ दान कई गुणा पुण्यकारी हो ज़ाता है और धन से धर्म, अर्थ, काम–इन तीनों की वृद्धि होती है। धर्म से काम (मनोरथ) और अर्थ की वृद्धि होती है और मोक्ष के इच्छुक पुरुषों के धर्म, अर्थ, काम परस्पर सहायक होकर बढ़ते रहते हैं। यह ब्राह्मण अपनी आंखों से नित्य

विद्याभ्यास करेगा और उसके प्रचार से लोगों को धर्मात्मा बनावेगा–ऐसा विचारकर मस्तनाथजी ने अपनी धूनी से थोड़ी भस्म लेकर उस ब्राह्मण के नेत्रों पर फैंकी तो उसकी आंखें निर्मल हो गई और उसे साफ दिखाई देने लगा। वह ब्राह्मण अपने दोनों नेत्र एवं तीसरी ज्ञान–दृष्टि को पाकर बाबा की स्तुति करने लगा कि आज मुझे बाबा के रूप में साक्षात् ही गोरक्ष मिल गए हैं। ये सिद्धों में सिद्ध हैं और अपनी योगमाया से अजन्मा होते हुए भी बचपन में मस्त नाम से जाने जाते थे परन्तु वही अब मस्तनाथजी के नाम से जाने जाते हैं। इन्होंने बहुत वर्षा करा दी, थोड़े दूध से बहुतों को तृप्त कर दिया, लंगड़ी को पैर दे दिए और मुझ अन्धे को दृष्टि प्रदान कर दी–इस प्रकार स्तुति करके वह गाँव में चला गया और उसने आदर के साथ इस वृत्तान्त को दूसरे लोगों को सुनाया। वे ग्रामवासी भी बार–बार गुरु का नाम ले–लेकर उनकी अद्भुत महिमा का बखान करने लगे।

सांख्यशास्त्र में प्रकृति को पैरों वाली कहा है क्योंकि उसमें क्रियाशक्ति विद्यमान रहती है और पुरुष को आँखों वाला कहा है क्योंकि उसमें चेतनशक्ति होती है। उसी प्रकृति और पुरुष के नाटक का अभिनय नाथजी ने अणिमा आदि सिद्धि से स्त्री को पैर और पुरुष को नेत्र देकर कर दिखाया।

परन्तु कुछ अज्ञानी लोग कहा करते हैं कि योगशास्त्र में और मंत्रादियों में जो सिद्धियाँ कही गई हैं, वे सब झूठी हैं। ऐसे भ्रान्त लोगों की भ्रान्ति दूर करने के लिए ही नाथजी ने सिद्धियाँ दिखाईं। अतः जो योगशास्त्रों में लिखा है वह सत्य है। उस पर संदेह नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार राजा प्रजा के अपराध के कारण उन्हें दण्ड देकर सन्मार्ग में लगाता है उसी प्रकार गुरु मस्तनाथजी प्राणियों को उनके पापकर्म की सजा देकर पुनः उन पर अनुग्रह बुद्धि से उनके कष्ट दूर कर उन्हें सत्कर्म में प्रेरित कर देते हैं। जो विज्ञान भाषा से और प्रत्यक्ष सिद्धि से सच्चे धर्म की शिक्षा देता है और दुःखों में सहायक होता है वही गुरु कहलाने के योग्य है। बाबा मस्तनाथजी में ये सब गुण थे। उनका न कोई मित्र था और न शत्रु। धर्म, अर्थ, काम–इन तीनों को वश में रखते हुए उन्होंने लोगों को मोक्षदायी उपदेश दिया।

।। श्रीमस्तनाथचरित में लंगड़ी को पैर व अन्धे को दृष्टि प्रदान करना नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।।

नौवाँ अध्याय

कुछ समय उसी रमणीक स्थल पर निवास करके अपनी योगशक्ति के प्रभाव को सबके सामने प्रकट करते हुए मस्तनाथजी अपनी शिष्यमण्डली के साथ किसी दूसरे स्थान की ओर चल पड़े। योगधर्म के पालन करने से जो सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, उनको न तो समाधि की और न ही तीर्थसेवा की आवश्यकता रहती है क्योंकि तीर्थ–सेवन का उद्देश्य चित्त की एकाग्रता है। उनके चरण जहाँ–जहाँ पर पड़ते हैं, वहीं मनवाञ्छित फल देनेवाले तीर्थस्थल बन जाते हैं। वे महापुरुष लोगों को सत्कर्म में लगाने के लिए ही स्वयं सत्कर्म में प्रवृत्त होते हैं। अतः उन पवित्र वनों तथा प्रसिद्ध तीर्थों पर वे मोक्षार्थी सिद्ध तथा श्रेष्ठ लोग भी सिद्धियों की प्राप्ति के लिए ही जाया करते हैं न कि साधारण लोगों की भाँति अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए।

जड़–चेतन के कर्त्ता भगवान् शंकर का भिक्षा मांगना, श्रीरामचन्द्र का महादेव का पूजन करना और सीता के लिए वन–वन भटकना, सर्वसमर्थ परशुराम का तीर्थाटन

करना–ये सब कार्य महान् आत्माओं ने जगत् में मर्यादा–पालन के लिए ही किए। अतः मस्तनाथजी भी नैसर्गिक सौन्दर्य से युक्त, स्त्री आदि विघ्नों से रहित, तप के योग्य वन में चले गए। वहाँ पर उन्होंने अनेक प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से घिरी हुई, बाघों से सेवित पर्वत की गुफा देखी। वहाँ पर शीतल छाया थी और मन्द–मन्द पवन बह रही थी। अतः वे वहीं पर अपनी शिष्यमण्डली के साथ विराजमान होगए।

उस जंगल में भ्रमण करते–करते एक दिन योगिराज को अद्‌भुत वृत्तान्त स्मरण हो आया। उसके याद आते ही वे बड़े जोर से अट्टहास (हंसने) करने लगे। उस हास से सारा जंगल गूंज उठा। उसे सुनकर शिष्यगण चकित रह गए और आपस में कहने लगे कि न कोई नृत्य–क्रीड़ा, न कोई अद्‌भुत वस्तु अथवा दृश्य ही दिखाई दे रहा है फिर गुरुजी की यह अद्‌भुत हंसी ? कोई कहे–मद से हंसे हैं अथवा किसी जंगली जानवर को देखकर हंसे अथवा किसी सन्देह के कारण यह हंसी आई, ऐसा भी नहीं लग रहा है। इस प्रकार शिष्यों ने परस्पर अपनी जिज्ञासा व्यक्त की परन्तु उन्हें हास का कारण मालूम नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने जिज्ञासावश गुरुदेव से पूछा कि हे गुरुवर ! आपके साथ रहते–रहते हमारा बहुत

समय बीत गया है परन्तु पहले आप कभी इस प्रकार नहीं हंसे क्योंकि पण्डित (विद्वान्) लोगों की हंसी मुख के भीतर ही रहती है, नृत्य करनेवालों की हंसी मन्द होती है, चतुर पुरुषों का हास होठों में ही रहता है और उसे ही उत्तम हास कहा गया है। जिस हास में जिह्वा स्पष्ट दिखाई दे, वह हास मध्यम कोटि का होता है और जिस हास में बड़े जोर का शब्द हो वह निकृष्ट कोटि का होता है और अहितकर (अनिष्टकारी) माना गया है। रुद्रदेव जिस समय दानवों का संहार करते हैं और जिस समय प्रलय करते हैं तो केवल उसी समय वे अट्टहास करते हैं और समय में नहीं। आप जैसे सिद्ध पुरुषों का हंसना अचानक नहीं हुआ करता है इसमें कोई विशेष कारण है। सो कृपा करके हमें वह कारण बताइए। हमारा मन अत्यन्त उद्विग्न हो रहा है। इस प्रकार पूछते हुए शिष्यों को मन्द–मन्द मुस्कराते हुए नाथजी कृपापूर्वक कहने लगे कि पूर्व वृत्तान्त के स्मरण आ जाने से हमें हंसी आगई थी। पहले यहाँ कभी समीपवर्ती गाँव में सद्‌गुरुओं का अनादर हुआ था। ब्राह्मणों का भी अपमान किया गया था तथा जिन्होंने साधुओं (सज्जनों) को भी असाधु (दुष्ट) बना दिया ऐसे उन लोगों की जो गति हुई उसका ध्यान कर मुझे हंसी आ गई थी। बस यही मेरे हास्य का कारण है।

पहले इस गाँव में देव–मन्दिर, कुएँ, तालाब, बावड़ी थे तथा अपनी वेदवाणी से सबको पवित्र करनेवाले देव–तुल्य ब्राह्मण रहते थे। वे ब्राह्मण ज्योतिष, तंत्र–पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, न्याय, सांख्य, योग, वेदान्तादि शास्त्रों के ज्ञाता थे और निरन्तर वेदाध्ययन में लगे रहते थे। श्रौत–स्मार्त कर्ममात्र करने से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है और उपासनासहित कर्म करने से सूर्यलोक मिलता है। इन दोनों प्रकार से कर्म करने वाले, राग–द्वेष से रंहित, सन्तों का सत्कार करने वाले, गृहस्थियों के उचित कर्मों में लगे हुए बड़े–बड़े महापुरुष इस गांव में निवास करते थे। यहाँ मेघ समय पर बरसता था, यज्ञाग्नि से निरन्तर धुआँ उठता रहता था। प्रजा पूर्ण मनोरथ हुई प्रसन्न रहती थी परन्तु इसी गाँव में एक कुम्हार रेहता था। उसकी धर्मपत्नी दयारहित और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली कठोरभाषिणी थी। एक बार उस स्त्री ने कपड़े धोने की इच्छा से जल गर्म करने के लिए अग्नि जलाई परन्तु उसी समय उस स्त्री के कठोरपन की परीक्षा करने के लिए अग्निदेव योगी का वेष बनाकर घड़ा मांगने के लिए उसके घर जा पहुँचा। भिक्षा न मांगने वाले उस विरक्त योगी ने उससे एक छोटे से घड़े की याचना की और कहा कि मेरे पास भोजन बनाने का बर्तन नहीं है इसीलिए

मुझे जरूर एक अच्छा सा घड़ा दे दो। बार–बार याचना करने पर भी वह, कुछ न बोली और अन्त में क्रुद्ध होकर 'ले' यह कहकर वह गरम जल की हांड़ी (घड़ा) उसने साधु के ऊपर फैंक दी और उस साधु को निर्लज्ज, मूर्ख, जात–कुजात, भूखे–नंगे न जाने सुबह–सुबह ही कहाँ से आ जाते हैं–इस प्रकार की बहुत सी गालियाँ भी सुनाईं। छोटी सी बात के लिए इस प्रकार से अपमानित हो उस साधु ने दुर्वासा ऋषि के समान भीषण रूप धारण कर सारे गाँव को ही शाप दे दिया। उस शाप से यह सारा गाँव भस्म होगया और कालान्तर में यहाँ भयंकर व्याघ्रादि हिंस्र जन्तु रहने लगे। कहाँ तो विविध सौन्दर्य वाली नगरी और कहाँ आज यह बीहड़ जंगल। हा ! काल तेरी लीला निराली है ! जैसे खट्टे की एक बूँद दूध को विकृत कर देती है, जैसे सड़ी हुई एक मछली सारे तालाब को मलिन कर देती है, उसी प्रकार उस दुष्टा नारी ने सारे गाँव को विकृत कर दिया। यही होता है कुसंगति का प्रभाव ! जबकि सज्जनों का एक बार किया गया संग भी गंगा के समान् सब पापों का नाश करके सुख देने वाला तथा पवित्र करने वाला होता है और जन्म–बन्धन से भी मुक्त करा देता है। सज्जनों द्वारा शिव पूजन के लिए अर्पित किए गए पुष्पों के ऊपर

बैठी हुई चींटी भी पूजन के समय शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्र–बिम्ब को चूमती है अर्थात् सत्संग क्षुद्र प्राणी को भी उच्च स्थान पर पहुँचा देता है। जैसे निर्मल जल वाली स्वच्छ गंगा, यमुना के संग से नीलेपन को धारण कर लेती है और जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार सत्संगति से प्रकृति (स्वभाव) में अवश्य परिवर्तन होता है। दुर्जन भी सत्संगति से उन्नत हो जाते हैं और सज्जन भी दुर्जन की संगति से नीचे गिर सकता है। जैसे दुर्योधन की संगति के कारण भीष्म भी विराट् की गायों का हरण करने गया और उसे चोरी का दोष भुगतना पड़ा। अतः दोषों के प्रकोप से जल, वायु, पृथिवी आदियों के कारण परमाणु विकृत होकर कीटाणु बनकर महामारी (हैजा, प्लेग संभवतः भविष्य में महामारी का रूप धारण करने वाला एड्स) का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार के गुरु के सारगर्भित वचन सुनकर शिष्यगण परस्पर कहने लगे कि गुरुवर दूसरे युग की बात भी जानते हैं। जबकि कलियुग में तो वेदचर्या, श्रद्धा, दान, दया, इन्द्रिय–निग्रह (संयम), सत्यभाषण, सुशीलता, श्रेष्ठ पुरुषों की प्राप्ति तथा सत्संगति आदि सब दुर्लभ हैं। इस युग में भी देवों के देव शिव अवतार गोरक्षनाथजी के अवतार के सिवाय

दूसरे को तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्यत्) का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः ये हमारे गुरुदेव साक्षात् ही शिव (गोरक्ष) के अंशावतार हैं और मस्तनाथ नाम से भूतल पर अपनी लीलाएँ दिखा रहे हैं। इन्हीं में ब्रह्मभावना दृढ़ करो ताकि भव–सागर से पार उतर सको।

।। श्रीमस्तनाथचरित में त्रिकालदर्शन नामक नौवाँ अध्याय समाप्त।।

दसवाँ अध्याय

जिन्होंने यम–नियमादि योग के अंगों के पालन से अपनी अन्तरिन्द्रय एवं बाह्य इन्द्रियों को वश में कर लिया है ऐसे अपने शिष्यों को तप–योग समाधि के द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान एवं उपदेश देने के लिए ही मस्तनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ था। अतः उन्होंने शिष्यों की प्रार्थना पर ही उन्हें द्वन्द्वों[1] में समभाव बनाने के लिए वन को ही उपयुक्त समझा क्योंकि जब तक मन की शुद्धि नहीं होती तब तक यथार्थ ज्ञान (निर्विकल्पक ज्ञान) नहीं हो सकता और जब तक निर्विकल्पक ज्ञान न हो तब तक केवल आत्मज्ञान नहीं हो सकता और जब तक आत्मज्ञान न हो तब तक ऐहलौकिक ऐश्वर्य[2] तथा मोक्ष उपलब्ध नहीं हो सकते। अतः मन की शुद्धि ही सबका एकमात्र साधन है और संसार के प्रति वैराग्य भाव होने से ही मन की शुद्धि होती है तथा सद्‌गुरु के वचनों से श्रद्धा होने से वैराग्य होता है।

---

१. सुख–दुःख, लाभ–हानि, जन्म–मरणादि।

२. सांसारिक सुख–सुविधा तथा सिद्धि आदि जिनसे जगत् में प्रसिद्धि होती है।

अतः साधनशील, वैराग्ययुक्त योगियों के लिए ब्रह्मचर्यव्रत पालन आवश्यक है और आसन, प्राणायाम का अभ्यास, पंचमुद्रा, पंचबन्ध, इन्द्रिय–निग्रह, धारणा (एकालम्बन में चित्त को स्थिर करना); ध्यान ये सब तथा द्वन्द्वों में सहनशीलता योग की साधना से ही उपलब्ध होते हैं। प्राणायाम करने की विधि केवल गुरु से आती है। अतः बाबा ने शिष्यों को शिक्षा देने हेतु स्त्री–जनादि के संसर्ग से रहित वन का ही आश्रय लिया क्योंकि योगसाधना एकान्त एवं पवित्र स्थान पर ही संभव हो सकती है।

उस वन के पास एक भालोठ नामक गाँव था। वहाँ पर दया, श्रद्धा, सुन्दर भक्ति इत्यादि गुणों से युक्त विद्वान् पुरुष रहते थे। उसी गाँव में सच्चरित्र, श्रद्धालु, जाति का हिन्दू (जाट) शीलका नाम का एक भक्त रहता था। उसने नाथजी की कीर्ति के विषय में सुन रखा था। अतः वह एक दिन उनके दर्शन के लिए हाथ में दूध का लोटा लिए हुए उस वन में आया क्योंकि संसार में देवताओं का भक्त दुर्लभ है, उनमें भी विष्णु का भक्त तो अत्यन्त दुर्लभ है और शिव का भक्त तो मिल ही नहीं सकता। इसी तरह योगिजन भी दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त भक्ति में अनुराग भी बहुत मुश्किल से मिलता है, उसमें भी रीति की

मर्यादा दुर्लभ है। केवलमात्र गुरु की कृपा ही गुरुभक्ति की विधि सिखाती है। अतः वह शीलका गुरु के पवित्र चरित्र को स्मरण करते हुए वहीं पहुँच गया जहाँ पेड़ के नीचे सिद्धासन में गुरुजी विराजमान थे। उसने पास जाकर प्रणाम किया तब नाथजी ने भी लौकिक मर्यादा का पालन करते हुए उसका कुशल–क्षेम पूछा और कहा कि हिंस्र जन्तुओं से भरा हुआ यह वन गाँव के लोगों को तो देखने में आता नहीं फिर तुम यहाँ तक कैसे आगए हो। नाथजी की अमृतमयी वाणी सुनकर शीलका जाट कहने लगा कि हम तो गाँव के सीधे–साधे लोग हैं और कहाँ आप जैसे महात्मा ! आप जैसे परोपकारी साधु के दर्शन मुझे हुए, यह मेरा अहोभाग्य है और आप जैसी पुण्यात्माओं के दर्शन ऐसे ही बीहड़ वनों में विरले ही जनों को हुआ करते हैं। इस प्रकार बहुभाँति से प्रशंसा करके उसने नतमस्तक होकर कहा कि आईपंथ में कोई व्यसन नहीं है और न ही कुछ खाने की लोलुपता है इसीलिए मैं मिठाई इत्यादि पदार्थ नहीं लाया अपितु थोड़ासा दूध लेकर आया हूँ। मैं तो मात्र आपके दर्शन के लिए आया हूँ।

इस प्रकार वह शीलका प्रतिदिन नाथजी के लिए दूध लाता और दर्शन करके उनकी आज्ञा लेकर घर चला जाता था। एक दिन गुरु ने कहा कि शेर एवं व्याघ्रों से भरे हुए तथा

चोरों के भय से युक्त इस विशाल जंगल में प्रतिदिन बिना हथियार तुम्हारा आना उचित नहीं है क्योंकि धर्मशास्त्र में कहा गया है कि हिंस्त्र जन्तुओं द्वारा मरे हुए, जल में डूबकर मरे हुए और विष खाकर मरे हुए तथा आत्मघाती पुरुष नरक में गिरते हैं और चोरों के हथियारों से मरे हुए पुरुषों को भी सद्गति नहीं मिलती। अतः तुम्हें अपने जीवन का ख्याल रखना चाहिए। नाथजी की बात सुनकर शीलका ने अभिमानपूर्वक कठोर वचन कहा कि चोर की क्या ताकत है। दो–दो, पाँच–पाँच आदमियों को तो मैं कुछ नहीं समझता। मैंने तो आपके नित्य दर्शन का नियम बना लिया है। बाबा उसके मन के भाव को जानते भी थे फिर भी उन्होंने उसकी परीक्षा लेने के लिए अपनी माया से शस्त्रधारी चोर का रूप धारण कर मार्ग में जाते हुए शीलका को ललकारा कि जो कुछ तुम्हारे पास है उसे यहीं रखकर जा सकते हो, अन्यथा नहीं। शीलका ने उस भयंकर आकार वाले चोर को देख भयभीत हो अपने जीवन को बचाने के लिए सब वस्त्र उतार कर उसके आगे रख दिये और फिर चोर (बाबा) उसे बिल्कुल नग्न अवस्था में वन में छोड़कर चला गया और उसकी सब चीजें ले जाकर उसका ही रूप धारण करके उसकी माता को दे दीं। जब अनेक रूप धारण

करने वाले शिव की माया से सारा जगत् मोहित हो जाता है तो साधारण व्यक्ति शीलका का मोहित हो जाना स्वाभाविक ही था और इस विषय में आश्चर्य भी कैसा ? शीलका की माता ने उसको अपना पुत्र समझकर उसके द्वारा लाए वस्त्रादि को ले लिया और शीलका के कमरे में रख दिए। इधर वह शीलका सोचने लगा कि नंगा हो जाने से लोग हसेंगे, इस कारण वृक्षों की टहनियों में छिप गया और जब सूर्य छिपने लगा तब वह धीरे–धीरे घर की तरफ चलने लगा और अन्त में रात में घर पहुँचकर माता से वस्त्र मांगे और माँ से कपड़े लेकर, पहनकर वन में चोर द्वारा अपने सब वस्त्रादि छीनने का सारा हाल उनको कह सुनाया। उसे सुनकर माता कहने लगी–तू क्या भांग पीकर आया है और स्वयं नंगा हो गया है नशे में ! अभी–अभी तो तू स्वयं अपने ये वस्त्र देकर गया है और अब कहता है कि चोरों ने छीन लिए थे। माता के ये वचन सुनकर शीलका ने अचरज माना और उस समय के पहने हुए कपड़ों में जो चिह्न थे उनको देखकर शीलका तुरन्त समझ गया कि यह सब उन नाथजी की माया है। फिर शीलका माता से कहने लगा कि हे माता ! तू बड़ी भोली है, सच तो यह है कि मैं पहले यहाँ आया ही नहीं था। मैंने नाथजी की बहुरूपिता नहीं पहचानी और गुरु ने दूसरा रूप बनाकर मेरे वस्त्र हरण कर लिए।

एक बार उस शीलका जाट ने भी नाथजी की परीक्षा लेने की सोची कि प्राचीन काल में भी बड़े–बड़े महर्षियों का चित्त विकृत हो जाता था। अतः क्या रात्रि में उनके पास कोई स्त्री आती है या महात्मा छिपकर स्वयं कहीं जाते हैं; इस विचार से नाथजी का मदभंग करने के उद्देश्य से उसने रात्रि में नाथजी को देखने का विचार बना लिया। वह सारा दिन बाबा की सेवा करता रहा और शाम को नाथजी के बार–बार कहने पर भी घर की तरफ कुछ दूर जाकर फिर लौट आया और एक पेड़ की आड़ में छिपकर खड़ा हो गया। ठीक आधी रात के समय उसने देखा कि मस्तनाथजी वहाँ से चल पड़े। तब वह भी उनके पीछे–पीछे चल पड़ा और छिपकर बाबा के कार्य को देखने लगा। उसने अपने गुरु को इन्द्रादि देवताओं की सभा में बैठे हुए देखा। उस समय नाथजी ने अपनी लीला से अनेक रूप धारण किये परन्तु अपनी अज्ञानता के कारण उन्हें नहीं समझ सका। उस सभा में संगीत के विभिन्न स्वरों में गान हो रहा था। सामवेद के गाने वाले तथा पुराण, कविता, नाट्य करने में निपुण पुरुषों से वह सभा भरी हुई थी। अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरादि देवों से वह सभा खचाखच भरी हुई थी। उस सभा में मौजूद देव,

दानव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारणादि के वस्त्रों में जड़ित मणियों की आभा से रात्रि का वह सारा अन्धकार नष्ट हो गया था। उस समय अनेक योगिवृन्द मस्तनाथजी को नमस्कार कर रहे थे। उन आश्चर्यों को देखते-देखते शीलका को घर की भी चिन्ता नहीं रही। जब आधी रात बीत गई, तब देवसभा एकदम अदृश्य हो गई और वह शीलका वृक्ष से उतरकर गुरु से पहले भागता हुआ गुरु के स्थान पर पहुँचा तो उसने देखा कि गुरुदेव पहले की भाँति धूने पर विराजमान हैं। बाबा लम्पट हैं, किसी प्रकार के गृहस्थी हैं-इत्यादि शीलका की जो पाप की भावना थी वह दूर (नष्ट) हो गई और उसे निश्चय होगया कि ये कोई देव हैं। तब वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा और उनकी निर्मल मन से प्रशंसा की। शीलका की भावपूर्ण स्तुतियों को सुनकर गुरुदेव कहने लगे कि हे भक्त ! सज्जनों तथा ब्राह्मणों (विद्वानों) की चुगली नहीं करनी चाहिए। यह मार्ग सज्जनों का नहीं है जो तुमने अपनाया है। तदनन्तर नाथजी ने शीलका के मन का भाव भी कह दिया। शीलका को निश्चय हो गया कि नाथजी मन की बात भी जान लेते हैं। पहले उसको ऐसा ज्ञान नहीं था। उसने घर जाकर रात्रि में जो देवसभा आदि देखी थी वह सब हाल कह सुनाया।

भक्तजन ऐसी बातों को दूसरों के सामने इसीलिए बताया करते हैं ताकि उनके गुरु का यश फैले परन्तु धूर्त लोग उसे मिथ्या (झूठ) समझा करते हैं। शीलका की बात को सुनकर बहुत से सज्जन तो चकित रह गए और बहुतों ने उसे सत्य मानकर बाबा के प्रति अपनी श्रद्धा दिखलाई। शीलका ने बाबा की सिद्धि देखकर स्वयं को धन्य समझा और सोचा कि ऐसे सिद्ध कब मिलें जो भवसागर से पार उतार दें। उसने गृहस्थाश्रम के भार को दुःखमय माना और अपनी समस्त धन–सम्पत्ति, माता–पिता के चरणों में समर्पित कर स्त्री, स्वजनादि का परित्याग करने से पाप का भागी बनूँगा। अतः श्रीरामचन्द्र की भाँति अपनी पत्नी एवं पुत्र को लेकर मस्तनाथजी की शरण में चला गया क्योंकि वैराग्य होना बहुत कठोर तपस्या का फल होता है और वही उत्तम मार्ग है। मन से वैराग्य होना उत्तम कहा जाता है और माया–मोह तथा लोभ (फल–प्राप्ति) के कारण जो वैराग्य होता है वह निकृष्ट (अधम) माना जाता है। दरिद्रता, व्याधि और सांसारिक दुःखों के कारण जो वैराग्य होता है, वह क्षणिक है, केवल आवेशमात्र है, वास्तविक वैराग्य नहीं। गुरु की कृपा नहीं होगी तो प्राणियों के स्वधर्म का विनाश हो जायेगा तथा गुरु–कृपा से ही सच्चा वैराग्य होता

है और वह मोक्ष दिलाने वाला होता है। जो सांसारिक दुःखों के कारण विरक्त हुए हैं उनका वह दुःखादि दूर हो जाने पर तथा ऐश्वर्य मिल जाने पर वे तुरन्त उसमें फंस जायेंगे। बाबा फिर कहने लगे कि हमारे निवासस्थान पर यह दैवधर्म है कि कोई तमांखु, भांग, धूम्रपान नहीं करेगा, न ही मदिरा–मांस का सेवन करेगा और स्त्री को तो दूर से ही छोड़ देना होगा। गुरुवर ने उसे समझाते हुए पुनः कहा कि घर में रहते हुए जब तुम्हें सब सुख मिल रहा है तो फिर इस अत्यन्त दुःखदायी कठोर मार्ग में क्यों प्रवृत्त होना चाहते हो। तपस्या कितनी कठोर है–ये सब शीत–गर्मी और वर्षा की यातनाओं को सहन करने वाले हमारे शिष्यगणों से पूछ लो। गृहस्थसुख के समान कोई भी सुख नहीं है। अतः साधु बनकर क्यों दुःखभागी बनना चाहते हो। मेरे द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते–चलते कभी यदि तेरा पतन हो गया तो तेरे माता–पिता, गुरु, देवता और कुल का भी पतन हो जायेगा। अतः इतने कठोर मार्ग पर मत चलो। बाबा की इतनी शिक्षा को सुनकर भी शीलका ने योगमार्ग में प्रवृत्त होने का अपना कोई उद्देश्य नहीं बताया क्योंकि उसे तो केवलमात्र योगशक्ति की ही अभिलाषा थी। उसके अतिहठ को देखकर गुरुदेव ने उसे विधिपूर्वक अपना शिष्य बना

लिया और बहुत बार उसकी कठोर परीक्षा लेकर उसका शीलनाथ नाम रख दिया और पुत्र का भी मिरचनाथ नाम रख दिया। उसकी पत्नी को भी योगिनी बना दिया। उन लोगों द्वारा बाबा की कीर्ति सुनकर बहुत से लोग योगी एवं योगिनी बनकर वन में तपस्या करने लगे।

यह सब गुरुदेव के प्रभाव से ही हुआ। नहीं तो कहाँ वह साधारण ग्रामीण और कहाँ योगिराज सिद्ध मस्तनाथ! शीलका को जो संसार से वैराग्य हुआ वह गुरुमन्त्र का ही प्रभाव था अन्यथा किसी के कहने से वह असम्भव था। साक्षात् श्री गोरक्ष के अवतार बाबा मस्तनाथजी के सम्पर्कमात्र से ही और उनके द्वारा दिए गए नाम व वेशभूषा धारण करने से शीलका जैसा साधारण किसान भी जगत् में पूजित हुआ। देखो! सत्संग का कितना महत्त्व है! अतः अपना कल्याण चाहने वाले पुरुषों को सत्संग करना चाहिए और कुसंगति से दूर रहना चाहिए।

।। श्रीमस्तनाथचरित में शीलका उद्धार नामक अथवा देवसभा व देवदर्शन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त।।

ग्यारहवाँ अध्याय

शीलका को वैराग्यासक्ति का उपदेश देकर परोपकारी व दयालु मस्तनाथजी उस स्थान से अन्यत्र चले गए क्योंकि जैसे बहती हुई नदी का जल पवित्र माना जाता है, उसी प्रकार चलता–फिरता योगी भी पवित्र रहता है और पूजित होता है जबकि एक स्थान पर रहने से आसक्ति होने का भय रहता है। अतः वे चलते–चलते निर्जन व तप करने योग्य खोखरा कोट नामक स्थान पर जा पहुँचे और वहाँ कुछ समय निवास भी किया। उन्हीं दिनों शुद्ध मन वाला व दृढ़व्रत वाला योगराज नामक एक शिष्य उनकी सेवा किया करता था। उसके मन में केवलमात्र बड़ेपन की इच्छा थी। वह केवल गुरु को ही सर्वस्व मानता था। अन्य देवी–देवताओं में उसकी आस्था नहीं थी। निरन्तर भक्ति में लीन रहने वाले उस योगराज ने एक बार अवसर पाकर नतमस्तक हो बाबा से निवेदन किया कि आप हमारे गुरु हैं और विरक्तों को मोक्ष देने वाले तथा शरणागतवत्सल व सामर्थ्यवान् हैं। काणे, अन्धे, लंगड़े–लूले इन सबको इनकी अभिलषित आँख, पाँव व सुन्दर शरीर देने वाले हो। आपने

ही पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन दिया है। अनावृष्टि होने पर वर्षा कराकर संतप्त सभी प्राणियों को पुनः हर्षित किया। मरे हुओं को जीवनदान दिया। अपनी माया से साधारण व्यक्ति को भी देवदर्शन कराया, जो भूतल पर मानवमात्र के लिए दुर्लभ था, वह सब आपने कर दिखाया है। आपके अलौकिक चरितों से समस्त दिशाएँ पावन हो गई हैं। सबके मनोरथ पूर्ण हो गए हैं। अतः कृपा करके मुझे भी योगिराज गोपीचन्द और भर्तृहरि के दर्शन करवा दीजिए। यदि वे अजर–अमर हैं तो दीखते क्यों नहीं और बिना दीखे लौकिक श्रद्धा नहीं हो सकती। जब राम, कृष्ण इत्यादि अवतारों ने भी अपने नश्वर शरीर का त्याग किया फिर भर्तृहरि जीव होते हुए भी क्यों नहीं मरे अर्थात् वे अजर–अमर कैसे रह गए ?

योगराज शिष्य के इस प्रकार पूछने पर बाबाजी ने उत्तर दिया कि योगबल से सब कुछ संभव है और जनश्रुति भी अक्षरशः सत्य है तथा मैं भी नाथसम्प्रदायावलम्बियों के मतानुसार यह मानता हूँ कि वे दोनों अजर–अमर हैं क्योंकि गुरु की बात प्रामाणिक होती है। गुरुदेव के वचन सुनकर शिष्य कहने लगा कि फिर भी गुरुजी उनका दर्शन हो जाए तो, मेरे मन का संदेह भी दूर हो जाए क्योंकि सब प्रमाणों में प्रत्यक्ष प्रमाण बलवान् होता

है। अपने प्रिय भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर बाबा ने कहा कि गुरु महाराज की माया से कल सवेरे उन दोनों का दर्शन तुम्हें हो जायेगा।

अगले दिन सवेरा होते ही लोगों ने कुमार अवस्था वाले कानों में कुण्डल पहने हुए, शरीर में भस्म रमाए हुए, हाथ में कमण्डलु लिए हुए दो साधुओं को देखा। उन्होंने बाबा मस्तनाथजी के पास आकर साष्टाङ्ग प्रमाण किया और 'आदेश', 'आदेश' इस प्रकार के शब्द कहे। गुरुदेव ने उन दोनों का अलग–अलग परिचय नाम लेकर योगराज को कराया और फिर योगराज ने उन दोनों की स्तुति की तथा कहा कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? तब उन्होंने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि विरक्तों की किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती क्योंकि यदि वे किसी को कष्ट दें तो पतित हो जाते हैं। आप गुरु की शरण लेकर नित्य उनकी सेवा में संलग्न रहो। ऐसा वचन सुनकर योगराज ने फिर नम्रभाव से पूछा कि अनाथों के नाथ, योगियों को योग तथा गृहस्थियों को भोग देनेवाले श्री गोरखनाथ के दर्शन से मैं आज तक वंचित हूँ और गुरु के पास रहता हुआ भी मैं अपनी उस तृष्णा को शान्त नहीं कर सका। अतः आप उनके चरणों के दर्शन कराकर मेरे जीवन को कृतार्थ करें। योगराज के

वचन सुनकर भर्तृजी हंसकर कहने लगे कि मैं तुम्हें यथार्थ रहस्य बताता हूँ। अतः ध्यान से सुनो।

जो ये धूने के पास आसन के ऊपर विराजमान हैं, इनको ही तू गोरक्षनाथजी जान। ये योगमाया का सहारा लेकर धर्मप्रचार के लिए अनेक रूप धारण कर लिया करते हैं। परन्तु संसार के विषयों की तरफ से सचेत रहते हैं। इस गुप्त रहस्य को संसार में आसक्त मूर्ख लोग (पामर) नहीं जान पाते। कोई–कोई श्रद्धालु भक्त ही इसे जान पाता है। भर्तृहरि जी ने पुनः कहा कि मैंने तेरी भक्ति से आकृष्ट होकर यह गुप्त रहस्य बताया है। उनके ऐसे अमृतमय वचन सुनकर योगराज मस्तनाथजी के चरणों में गिर पड़ा और हे शरणागतवत्सल! आप मेरे रक्षक एवं शरण हो। इस प्रकार कहते हुए अज्ञान से उत्पन्न अपने दोष के लिए क्षमायाचना की। फिर मस्तनाथजी ने भी हंसते–हंसते भर्तृहरि से कहा कि तुमने यह क्या किया जो मेरे गुप्त वेश का लोक में बखान कर दिया। मुझ जैसों को तो गुप्त वेश में ही रहना चाहिए, नहीं तो अधिक प्रपंच की आशंका रहती है। तब

मस्तनाथजी के कथन से संतुष्ट हुए पुनः–पुनः 'आदेश'–'आदेश' शब्द कहते हुए भर्तृहरि व गोपीचन्द अन्तर्धान हो गए और मलयाचल पर चले गए।

इस प्रकार मस्तनाथजी और भर्तृहरि के आपस के वार्तालाप से योगराज की गुरु के वचनों में दृढ़ आस्था हो गई क्योंकि कहा भी गया है कि देवपूजनादि सेवा व्यक्ति को अच्छे कामों में लगाती है, पापों को दूर करती है, मोक्ष को देती है, स्वर्गादि भोगों को भी प्रदान करती है। अधिक क्या कहें, सज्जन व्यक्ति के लिए सेवा कल्पवृक्ष की तरह क्या–क्या नहीं देती अपितु सब कुछ प्रदान करती हैं।

।। श्रीमस्तनाथचरित में आत्मपरिचय तथा गोपीचन्द, भर्तृहरि का दर्शन नामक ग्यारहवाँ समाप्त।।

बारहवाँ अध्याय

पंजाब में पटियाला नाम का एक नगर है। वहाँ पर किसी समय ग्रन्थसाहब को मानने वाला, ब्राह्मणों की सेवा करने वाला व प्रजा का पुत्र की तरह पालन करने वाला एक धर्मात्मा राजा निवास करता था। उसका यश सब दिशाओं में फैला हुआ था। उसी पटियाला प्रान्त में उचाना नाम का एक सुन्दर ग्राम था। वहाँ के लोग सदाचारी थे।

किसी समय सिद्ध बाबा मस्तनाथजी घूमते–घूमते अपने शिष्यों के साथ वहाँ पर जा पहुँचे और गाँव के पास सूने स्थान पर अपना आसन जमा लिया। फिर अपने शिष्यों को वेदान्त शास्त्र का रहस्य बताने लगे। तभी बाबा के आगमन के विषय में सुनकर वहाँ के श्रद्धालु सेवकजन बड़े हर्ष के साथ उनके दर्शन के लिए आए और आपस में सलाह करने लगे कि इस अतिथि का आदर–सत्कार किस प्रकार किया जाए क्योंकि जहाँ अतिथि का सत्कार नहीं किया जाता वहाँ पर पुण्य का ह्रास हो जाता है। एक साधारण सिद्ध भी ग्रामादि को भस्म कर देता है। अतः हमें अपने गाँव के गुरु से पूछकर ही इस विशिष्ट

अतिथि का सत्कार करना चाहिए। ऐसा विचारकर वे अपने गुरु के पास मठ में गए। मूर्ख, अहंकारी, बेकार की स्पर्धा (होड़ लगाने वाले) करने वाले, धर्मकार्यों से विमुख, अन्न के कीड़े; ऐसे मानव पृथ्वी पर भार बने हुए पशु की भाँति विचरण करते रहते हैं। वे देवता, सिद्ध, विद्वान्, ऋषि, देवशास्त्रादि से द्वेष करने वाले होते हैं। मतमतान्तरों और सम्प्रदायों की निन्दामात्र ही इनका कार्य होता है और स्वयं को शास्त्रज्ञ मानते हुए मूर्ख लोगों को ठगा करते हैं। इन्हें न परमेश्वर का भय रहता है, न राजा का भय होता है और न ही गुरु तथा धर्म का भय होता है।

वे लोग अपने गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर निवेदन करने लगे कि एक अतिथि साधु आया है अतः उनके सत्कार की शास्त्रोक्त विधि बताइए। तब उनके गुरु ने कहा कि वह साधु व्यर्थ का अभिमान करने वाला, मूर्ख, वैश्य का पुत्र है और अपने आप को गोरक्षनाथ कहता है। उसके पास न ही कोई सिद्धि है। अतः हम ही पूज्य हैं। तुम्हें उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए और हम उसे शाप देकर तुरन्त भस्म कर देंगे। ऐसे पाखण्डी लोग यूँ ही इधर से उधर घूमा करते हैं। यदि इसकी पूजा की जायेगी तो हर वर्ष

इसको भेंट देनी पड़ा करेगी। अतः इसको किसी प्रकार की भेंट मत देना और अपनी मर्जी के मुताबिक केवल भोजन दे देना। लोगों ने अपने गुरु की बात मान ली और वे अपने घर चले गए। परन्तु कुछ ने बाबा के पास भोजन ले जाकर कहा कि हमारी दक्षिणा की गुंजाइश नहीं है, हम तो केवल भोजन ही दे सकते है। यही हमारे गाँव की मर्यादा है परन्तु मस्तनाथजी ने बिना दक्षिणा का भोजन स्वीकार नहीं किया तब वे फिर अपने महन्त (मठाधीश) के पास गए और बाबा ने जो कहा था वह सारा कह सुनाया। उसे सुनकर वह फिर कहने लगा कि इस प्रकार के ठग संसार में बहुत घूमा करते हैं। वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मेरे आगे उसकी कुछ नहीं चल सकती। बनिए लोग स्वभाव से ही कंजूस होते हैं। यदि उनकी बात की पुष्टि करने वाला कोई मिल जाए तो कहना ही क्या ? इसलिए गाँव के बनिए वगैरा फिर बाबा के पास नहीं गए। जो कुछ भक्ति थी वह भी जाती रही और सब बाबा की निन्दा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने बाबा का बहुत निरादर किया। तीन दिन तक किसी ने पानी तक भी नहीं पूछा, तब बाबा ने सोचा कि सज्जनों की निन्दा करने वाले, ब्राह्मणों (विद्वानों) से द्रोह रखने वाले, शास्त्रों से द्वेष करने वाले, राजा, गुरु,

देवता और सिद्ध पुरुषों के विरोधी, भक्तिहीन, वेद से पराङ्मुख व्यक्तियों से बढ़कर दूसरा कोई पापी नहीं है। अतः इनको दण्ड के द्वारा ही सन्मार्ग पर लगाना चाहिए। इनके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं होता। अतः मस्तनाथजी ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि जल्दी जाओ और दरिद्रता के द्योतक फटे पुराने कपड़े लेकर उनको बाँधकर गाँव के बीच फेंक आओ। बाबा की आज्ञा पाते ही शिष्यगणों ने तुरन्त फटे–पुराने वस्त्र एकत्रित किए और उनकी गठरी बांध ली। फिर उस गठरी को लेकर गाँव के मध्य फेंक आए। तब भयभीत हुए लोग आपस में सलाह करने लगे कि अब क्या किया जाए ? तब गाँव के मुखिया ने कहा कि जिसने पथभ्रष्ट किया, अब उसके घर इसे ले जाकर डालते हैं। ऐसा विचारकर वे अपने गुरु के पास मठ में गए और उनके वचन की याद दिलाकर वह कपड़ों की पोटली उनके मठ में फेंक दी और रोते हुए कहने लगे कि अपने किए का फल मिल गया है। अतः शापरूप इन कपड़ों को आप ही रखिए। वह मठाधिपति अपने स्वभाव को जानता हुआ भी अपने पाण्डित्य पर पश्चात्ताप करने लगा और अपने अन्दर दुष्ट लक्षणों का बार–बार स्मरण कर बड़ा दुःखी हुआ और अत्यन्त भयभीत हुआ उन वस्त्रों को गाँव में फेंक आया।

वहाँ गाँव के बालकों ने उनको फाड़कर अपनी गेंद बना ली और उनसे खेलने लगे। खेलते–खेलते बालक शाप के वशीभूत होकर आपस में झगड़ा करने लगे और लहुलूहान होकर अपने–अपने घर चले गए।

बाबा की माया को प्रकट हुई देखकर भावी दुःख से डरकर उस गाँव के लोग अपने किए पर पश्चात्ताप करने लगे क्योंकि अपने कर्म ही अच्छे और बुरे भाग्य का निर्माण करते हैं। शाप के कारण उन लोगों में इतनी बुद्धि भी नहीं रही कि वे बाबा के पास जाकर क्षमा–याचना कर लेते।

उस समय अनेक प्रकार के प्राकृतिक उपद्रव होने लगे। जैसे–वर्षा से आसपास का सारा प्रदेश तहसनहस हो गया। आपस की लड़ाई, चोरी, डकैती आदि उपद्रव भी होने लगे। आखिरकार प्राकृतिक आपदाओं को सहन करते–करते सब लोग बिल्कुल निर्धन हो गए। सज्जनों की भी दुर्जनों के संग से ऐसी दशा हो गई। उस दुर्दशा के कारण वे लोग गाँव छोड़कर अन्यत्र चले गए और इस प्रकार गुरु का माहात्म्य एवं उनकी योगसिद्धि सब जगह प्रसिद्ध हो गई। अतः कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों को उस उचाना काण्ड को ध्यान

में रखते हुए स्वार्थी और दूसरों को ठगने वाले साधुओं का संग ऊपर दूध लगे परन्तु भीतर जहर से भरे हुए घड़े के समान छोड़ देना चाहिए और उनके मायाजाल में कदापि नहीं फंसना चाहिए।

इस प्रकार शास्त्रविरुद्ध अपनी मर्जी से आचरण करने वाले कुमार्गगामी उन लोगों को दण्ड देकर सृष्टि के कल्याण के लिए बाबा अपनी शिष्यमण्डली के साथ अपने अभीष्ट स्थान की ओर चल पड़े।

।। श्रीमस्तनाथचरित में वेद-नियम प्रचार अथवा साधुनिरादर नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।।

तेरहवाँ अध्याय

उसी हरियाणा प्रदेश में महम नामक प्रसिद्ध स्थान के थाने के अन्तर्गत घड़ावढ़ी नामक गाँव है, जहाँ किसी समय पुण्य कर्म करने वाले लोग रहते थे। एक बार घूमते–घूमते सिद्धों की विद्या में प्रवीण (निपुण) सिद्ध मस्तनाथ जी साक्षात् चन्द्रमा के टुकड़े की भाँति वहाँ पहुँच गए। वहाँ एक पत्तों से रहित सूखा बड़ (बरगद) का पेड़ था जो गहरे अन्धेरे में यमराज की भाँति प्रतीत होता था परन्तु मस्तनाथजी ने उस वृक्ष के नीचे बड़े आनन्द से अपना धूना चेतन किया। जब लोगों ने सुना तो वे सब जिनमें याचक थे, सुखी व्यक्ति थे, मूर्ख एवं विद्वान् थे, फल–फूलों सहित अनेक प्रकार की भेंट लेकर उनके दर्शन के लिए वहाँ पर आ पहुँचे और हाथ जोड़कर उनकी भाँति–भाँति से स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा कि जिनके धूने की भस्ममात्र से अनेक प्रकार के रोगों का नाश हो जाता है। आज हमें बड़े भाग्य से आप सिद्ध के दर्शन हुए हैं। आपने ही सारा अज्ञान का अन्धेरा दूर कर दिया और आज ही अपने आगमन से आपने हमारे गाँव को पवित्र कर दिया

है। हमारे सब पाप नष्ट हो गए हैं और आपके दर्शनमात्र से ही हमारे सारे मनोरथ पूर्ण हो गए हैं। इस प्रकार की भक्तजनों की सेवा देखकर नाथजी बहुत प्रसन्न हुए।

उस नगर में एक सुशील जाट रहता था। उसके सन्तान नहीं थी। बुढ़ापे के कारण उसका शरीर कांपता था। पुत्र न होने के कारण वह बहुत दुःखी था। पुत्र–प्राप्ति के लिए उसने सब उपाय कर लिए थे परन्तु सबके सब बेकार हो गए थे। जब उसने सिद्ध मस्तनाथजी के आगमन का समाचार सुना तो वह घर के सब काम–काज छोड़कर अहंकार रहित हुआ पुत्र की आस से उनके पास आया और प्रणाम कर हाथ जोड़कर अपनी मनोकामना के विषय में विनती की। उस वृद्ध दम्पती को देखकर सब लोग हंसते हुए कहने लगे कि ये बूढ़ा–बूढ़ी पुत्र लेने के लिए आए हैं ! क्या यह अवस्था सन्तान उत्पन्न करने योग्य है ? उन लोगों को इस प्रकार मजाक उड़ाते देखकर किसी सभ्य व्यक्ति ने कहा कि बुद्धिमानों का इस प्रकार हंसना उचित नहीं है क्योंकि किसी की सहायता से यदि किसी का मंगल हो जाये तो तुम्हें इससे क्या नुकसान होगा ? अर्थात् तुम्हारा तो इसमें कोई नुकसान नहीं है और भी सभी यहाँ किसी न किसी स्वार्थ से ही आए हैं। वस्तुतः पुत्रोत्पादन के लिए इन्हें कोई मंत्रादि साधन दे देना चाहिए परन्तु इस बात को सुनकर

कुछ लोग कहने लगे कि पुत्रोत्पादन की उम्र इनकी जा चुकी है। अब बुढ़ापे में इनके पुत्र कहाँ से होगा। अतः मन्त्रादि सब साधन इनके लिए व्यर्थ हैं।

भक्ति में बहुत शक्ति होती है। भक्ति याचक के किस प्रयोजन को पूरा नहीं कर सकती ? सिद्ध के मन्त्र–तन्त्र भी परमेश्वर के द्वारा सिद्ध होते हैं। बाबा ने कहा कि इनके दो पुत्ररत्न उत्पन्न होंगे। इसे सुनकर गरीब लोग तो बाबा का गुणगान करने लगे परन्तु कुछ लोग कहने लगे कि इनके पुत्र हो ही नहीं सकता। हम तो बाबा आपकी बात को तब सत्य मानें जब यह बड़ का सूखा पेड़ हरा हो जाए। तब मस्तनाथजी ने कहा कि निश्चय ही यह मनुष्य पुत्र पावेगा और यह सूखा पेड़ भी पत्तों वाला हो जावेगा। यह कहकर उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि इस वृक्ष की जड़ में एक सौ (सैकड़ा) कलश जल डालो। आज्ञा पाते ही शिष्यों ने सैकड़ों कलश पानी उस वृक्ष की जड़ में डाल दिया। जल डालते ही वह वृक्ष हरा हो गया और उसमें बहुत से हरे अंकुर निकल आए। जब पत्तों के अंकुर निकले तो शिष्यों ने गुरु से कहा कि पेड़ पर पहले तीन पत्ते दिखाई दिए हैं। फिर तीन–तीन शाखाओं में पत्ते आए और फिर क्षणभर में ही सारा वृक्ष हरा हो गया है। शिष्यों के वचन सुनकर सिद्ध मस्तनाथजी बोले कि वर्ष–वर्ष के बाद इन्हें तीन सन्तान होंगीं। इसे

सुनकर सभी ने उनकी जय–जयकार की और उन वृद्धों ने कहा कि आपने हमारी लाज रख ली है। तुमने मेरे सूने घर में उजाला कर दिया है। तुमने मेरे सारे संकट दूर कर दिए हैं। वहाँ के निवासियों ने अपने सामने ही वृक्ष को हरा देखकर बहुत अचरज माना और फिर उनको निश्चय हो गया कि इन वृद्धों को अवश्य ही पुत्र होगा। सिद्ध मस्तनाथजी वहाँ सात दिन निवास करके आगे चल पड़े।

ठीक एक वर्ष बाद उस वृद्ध भक्त के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। तब उसने उन नाथ साधुओं को आदरपूर्वक वस्त्रादि दिए और ब्राह्मणों को भी बहुत सा धन दिया। तीन वर्ष तक वैसा ही होता रहा जैसा नाथजी ने कहा था अर्थात् तीन वर्षों में उनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। जब गुरु मस्तनाथजी ने उस जाट को पुत्र उत्पन्न होने का आशीर्वाद दिया था तो उसे सुनकर उसके खेत में हल चलाने वाले दो सन्तानहीन मुसलमान भी उनके पास पुत्रप्राप्ति के लिए आए। बाबा ने उन्हें भी पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दे दिया था। उनके घर भी पुत्र उत्पन्न हुए। वे मुसलमान भी बाबा से बड़ा प्रेम करने लगे और उन्हें 'खुदा' कहकर पुकारते थे। जिस प्रकार कम्बोज प्रान्त में पीर रत्ननाथ की कीर्ति गाई जाती है उसी प्रकार उस यवन ने मस्तनाथजी के यश का बखान (गान) किया। जो श्रेष्ठ लोगों की

निन्दा करते हैं, उनका मनोरथ कभी पूरा नहीं होता और जो अहंकारी सत्य को हर एक के सामने झूठ कह देते हैं और जो अपने से बड़ों के साथ समानता करने लगते हैं वे लोग दुःख के भागी होते हैं। उनकी यह कीर्ति, ब्राह्मणों, मुसलमानों तथा गाँव और जंगलों तक में फैल गई और बाबा को हिन्दू तथा मुसलमान योगी सिद्ध कहने लगे। मस्त योगीश्वर शिव के ऐश्वर्य से युक्त हुआ चारों दिशाओं में घूमता हुआ छिपे हुए रूप में रहता हुआ भी देव ही था। अतः उनके माहात्म्य का कहाँ तक बखान किया जाए ?

वह वटवृक्ष आज भी पूजा जाता है और उसके दर्शन से शान्ति मिलती है तथा शोक, सन्ताप, भय एवं दुःख से होने वाला ताप (जलन) बिल्कुल शान्त हो जाता है। उस विशाल वटवृक्ष की शोभा लोकोत्तर है और सिद्ध मस्तनाथजी का यश (आज) भी अत्यधिक देदीप्यमान हो रहा है।

।। श्रीमस्तनाथचरित में सूखे पेड़ को हरा करना तथा सन्तानहीन को सन्तान प्रदान करना नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।।

चौदहवाँ अध्याय

यदुवंशी श्रीकृष्ण की भाँति जिनका जन्म और मरण नहीं है ऐसे शिवरूप मस्तनाथजी एक ही समय में अनेक रूप वाले हुए अर्थात् उन्होंने एक ही समय में अपने भाँति–भाँति के रूप दिखाए। वे याचकों की मनोकामनाएँ पूर्ण कर देते थे और संकट को दूर भगा देते थे परन्तु नाराज हो जाने पर आपत्ति (कष्ट) के कारण भी बन जाते थे। इसके अतिरिक्त वे अपनी सिद्धियों के माध्यम से तथा शास्त्रों के दृष्टान्तों से लोगों की आपस की ईर्ष्या, द्वेष, मद आदि दुर्गुणों को दूर कर देते थे। इसके विपरीत जो व्यक्ति सिद्धों और देवता व उनके भक्तों तथा गुरुओं का अनादर करते थे उनको नाना प्रकार की विपत्तियाँ, पाप व क्लेश घेर लेते थे। बिना ज्ञान के जो जाप के द्वारा सिद्धि होती है वह तामसी सिद्धि कहलाती है और ज्ञान होने पर जो सिद्धि होती है वह सात्त्विक सिद्धि कहलाती है। आत्मा के ज्ञान–तत्त्व से जो जप–पूजादि किए जाते हैं वह योग का सात्त्विक मार्ग कहलाता है तथा ज्ञान के न रहने से विवेक के द्वारा अपने स्वरूप का परिचय किया जाता है। अतः

योगी मस्तनाथजी सात्त्विक तथा आत्मज्ञानी थे और साक्षात् गोरक्ष जी के अवतार थे। ऐसे वे योगी एक बार घूमते हुए अनेक प्रकार के भक्तों से भरे हुए, देवताओं से सुशोभित विशाल एवं रमणीय कलोई गाँव में जा पहुँचे और वहाँ कुछ समय रहकर वे अपने शिष्यों के साथ वहाँ से चल पड़े। जब वे बोहर गाँव के नजदीक आए तो एक कुएँ के पास लोगों ने उन्हें घेर लिया, तब वे उस कुएँ के पास एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। वहाँ पर बहुत सी स्त्रियाँ पानी भर रही थी। उनमें एक स्त्री अनुपमा सुन्दरी थी जिसकी बराबरी कामदेव की पत्नी रति भी नहीं कर सकती थीं। रूप और यौवन से गर्वित एवं धन से उन्मत्त पतिव्रता उसकी अपने पति के सिवाय और किसी सिद्ध पुरुष की किसी भी सिद्धि में श्रद्धा नहीं थी। पानी भरते–भरते उसकी दृष्टि समीप में विराजमान दिगम्बरधारी सिद्ध बाबा के ऊपर पड़ी। तब वह जल लेने आई हुई दूसरी स्त्रियों से कहने लगी कि सुन्दर शरीर वाले, कामदेव के स्वरूप को भी तिरस्कृत करने वाले, अंगों पर भस्म लगाए, विशाल पिंगल वर्ण की जटाएँ धारण किए हुए, नग्न, मदमस्त एवं निर्लज्ज उस योगी को तो तनिक देखो। पता नहीं किस कारण लोग उसे बहुत आदर के साथ नमस्कार कर रहे हैं। कोई पैरों को छू रहा है और

दूसरा कोई देवता की भाँति बहुत अधिक इनकी स्तुति कर रहा है अथवा सभी अन्धे हुए (विवेकहीन) वस्त्रों से रहित शरीर वाले उसको देख रहे हैं और बार–बार देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। कोई कह रहा है कि तुम ईश्वर हो और कोई कह रहा है कि तुम गुरु हो अथवा तुम्हारी स्तुति किन शब्दों में करें–यह कहकर हंस पड़ी। तब उसकी गर्विली वाणी सुनकर मस्तनाथजी ने उसका अहंकार भंग करने के लिए कहा कि हे नारी! सन्तों की ऐसी ही हालत होती है उनको देखकर तुम्हें ग्लानि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि तू तो धनवानों के यहाँ पैदा हुई है। अतः गरीबों को वस्त्रहीन देखकर नहीं हंसना चाहिए। ब्रह्मा ने सभी को एक समान नहीं बनाया है। किसी को निर्धन बनाया है और किसी को अमीर। अतः जो कुलीन हैं वे हमेशा सज्जनों की पूजा एवं सत्कार किया करते हैं। वे किसी की निन्दा नहीं करते। उनके इस प्रकार के वचनों को सुनकर भी उस नारी ने कठोर वचन कहा कि तू ही अकुलीन है जो इस तरह नंगा फिरता है और तुम्हारे कहने से क्या मेरी कुलीनता चली जायेगी ? उस स्त्री के व्यंग्य से भरे हुए कठोर वचन सुनकर बाबा ने सोचा कि इससे अधिक देर तक बहस करना उचित नहीं है क्योंकि अग्नि में जल डालने से उसकी

चिन्गारियाँ ऊपर की ओर ही उठती हैं। इसी तरह इसका क्रोध भी मीठे वचनों से और बढ़ता है। अतः इसे समझाना बहुत कठिन है। ऐसा समझकर उसे इस प्रकार शाप दे दिया कि हे अहंकार करने वाली नारी ! तू भाग्यवती है, धन्य है परन्तु तू मेरी महिमा को नहीं जानती। जा ! तू भी मेरी तरह पहले किए गए कर्म के वश से भस्मधारिणी तथा नंगी हो जा क्योंकि जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिल जाता है। जिस प्रकार पूर्वकाल में गौतम ने शिव अवतार का अनादर किया था और फिर दुःखी होकर उसके लिङ्ग की पूजा करनी पड़ी थी, उसी तरह तू भी दुःखी होकर मेरा सम्मान करेगी।

मस्तनाथजी की ऐसी बात सुनकर जल भरने वाली दूसरी स्त्रियाँ हंसने लगी। तब नाथजी भी उस स्थान को भक्तिभाव से रहित जानकर सूने प्रदेश खोखराकोट के जंगल में चले गए। वह जंगल बहुत फैला हुआ था और वहाँ पहुँचना लोगों के लिए अत्यन्त कठिन था। वे वहाँ आसन लगाकर बैठ गए। उधर क्रोध में भरी हुई रास्ते में जाती हुई उस स्त्री के सिर पर रक्खा हुआ घड़ा "मस्तनाथजी ही तेरा उद्धार करें" यह कहता हुआ धरती पर गिर पड़ा।

पाई नाम वाली वह स्त्री जब घर पहुँची तो शाप के कारण उसकी ऐसी हालत हो गई जैसे भूत के सवार होने से हो जाती है। उसका चित्त उदास हो गया और वह पागल की तरह हो गई। उसका प्रेम न पति में रहा और न ही पुत्र में ममता रही। यहाँ, तक कि अपने भाई–बन्धुओं से भी नाता तोड़ दिया तथा नाथजी की विरहरूपी अग्नि उसके लिए सूर्य की तरह असह्य हो गई और संसार उसे श्मशान की भाँति लगने लगा। घर भूतों के वास की भाँति प्रतीत होने लगा। उसने वस्त्रों को फाड़कर फैंक दिया और अपनी उच्च कुलीनता तथा पतिव्रता रूप गौरवता को भूलकर नंगी हो गई फिर सारे जेवरों को तोड़–फोड़कर दूर फेंक दिया और स्वयं आनन्द में मग्न हो गई। चूल्हे की राख लेकर अपने शरीर पर लगा ली। आँगन में आँखें बन्द करके बैठ गई और "ॐ श्री गोरक्षनाथाय नमः" मंत्र का जाप करने लगी। जब वह पागल होकर जंगल की तरफ भागने लगी, तब सब लोग उसके पीछे–पीछे चलने लगे और कहने लगे कि देखो ! यह पाई कहाँ जाती है ? उन परुषों में से किसी ने उसके पति हरिसिंह को जाकर कहा कि भाई ! देख, तेरी स्त्री पागल होकर जा रही है। उसे जल्दी रोको। उसका पति तुरन्त उसके पास पहुँचा और

उसे रोककर समझाने लगा कि तुमको क्या हो गया ? जो तुम नंगी हो गई हो। फिर वस्त्र देकर उसे घर ले आया और बहुत प्रकार से उसे समझाया। फिर पूछने लगा कि तुझे किसने पागल बना दिया है। मुझे जल्दी बताओ। हृदय को आनन्द देने वाले एक वर्ष के बालक (पुत्र) को छोड़कर और मेरे प्रेम की भी परवाह न करके क्या कारण है जो तू पागल हो गई है। कुलीन स्त्रियों की परपुरुष का दर्शन करने से यहाँ तथा परलोक में भी निन्दा होती है और वे सती स्त्रियाँ पुरुषों के घर की साक्षात् लक्ष्मी होती हैं और भी जिन घरों में कभी कलह नहीं होता, स्त्रियाँ पतिव्रता तथा पतियों में आसक्त चित्त वाली हैं और जिनकी एक आँख से देखनेमात्र से हृदय आकृष्ट होता हो, ये सब स्वर्गीय पदार्थ माने जाते हैं परन्तु इतना समझाने पर भी उसने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और यहाँ तक की काम करते समय भी उससे गलतियाँ होने लगी। किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता था।

एक दिन जल लाने वाली किसी स्त्री ने हरिसिंह को कहा कि इसकी यह हालत मस्तनाथजी के शाप के कारण हो गई है। ऐसा सुनकर हरिसिंह क्रोध के कारण आग–बबूला हो, शस्त्र लेकर वन की ओर चल पड़ा और वन में जाकर बाबा मस्तनाथजी को ललकारा। जैसे पूर्वकाल में सिंह के पास जाकर राजा दिलीप की भुजा जड़वत् हो गई

थी उसी प्रकार हरिसिंह भी जड़ की भाँति बाबा के सामने खड़ा रहा। वह बोलना चाहता था परन्तु उसकी आवाज नहीं निकलती थी परन्तु इतने पर भी उसने अपने युद्ध का हठ नहीं छोड़ा। तब उसके भी मद को चूर करने के लिए बाबा ने स्पष्ट कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो। तब हरिसिंह प्रहार करने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना लगाने लगा तो उसका धनुष उसके हाथ से गिर पड़ा। वह जिधर देखे उधर ही बाबा दिखाई दिए। उन्हें देख वह अत्यन्त चकित रह गया। तब उसने बाबा को प्रणाम किया और उनके चरणों में गिर पड़ा तथा अपने कुत्सित आचरण के लिए क्षमा मांगने लगा। तब मस्तनाथजी ने कहा कि विरक्त सन्तों को कौन प्रिय और कौन अप्रिय है ? दुष्ट हो अथवा भक्त हो, उनकी दृष्टि दोनों के प्रति समान होती है। तू इतना व्याकुल क्यों हो रहा है ? इसमें न तुम्हारा कोई दोष है और न ही मेरा। दोष तो केवल तुम्हारी पत्नी का है। वह अब तुम्हारे लायक नहीं है। सब प्रकार से त्याज्य है क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपने किए का फल भोगता है। अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो और जाओ। तब हरिसिंह घर लौट आया और मैना[१] पाई

१. मुझे इसके विषय में ठोस प्रमाण नहीं मिला कि यह मैना कौन थी परन्तु किंवदन्ती इसे पाई की पुत्री मानती है जबकि बालन्द गाँव में स्थित मन्दिर के अनुसार मैनापाई एक ही स्त्री का नाम था।

को लेकर बाबा की शिष्या बनाने के लिए स्वयं बाबा के पास गया। स्त्री के पहले के प्रेम से विरक्त हुए हरिसिंह को बाबा ने नाथसम्प्रदाय की तथा पुत्र को पालने की शिक्षा दी और कहा कि पुत्र उत्पन्न करके पितरों का ऋण दूर करना, पुत्र का उपनयनादि संस्कार करना और परिवारसहित सन्तान का पालन करना, ये सब गृहस्थियों के कर्त्तव्य हैं।

इस प्रकार शास्त्रानुकूल गुरु के उपदेश से हरिसिंह का मोह तथा क्रोध दूर होगया और वह शान्तचित्त हो अपने घर को लौट आया।

कुछ समय के पश्चात् नाथ–सम्प्रदाय से स्नेह करने वाली उस नारी को बाबा ने गुरुमंत्रादि का उपदेश दिया। इस प्रकार वह ज्ञान से भी दीक्षित होगई। वह हर समय ध्यान में लीन रहती थी और निरन्तर जप करती हुई तपस्या में प्रवृत्त होगई। वह प्रत्यक्ष अणिमादि आठ सिद्धियों से युक्त होकर दाक्षायणी (दक्ष की पुत्र सती {पावर्ती}) की भाँति ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष की अधिकारिणी होगई।

।। श्रीमस्तनाथचरित में पाईदण्डदान नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

मेरे गुरुदेव मस्तनाथजी ! मैं तुम्हारा दिन–रात स्मरण करती रहती हूँ क्योंकि तुम भक्तों के शरीर के सब कष्टों को हर लेते हो।

मैं एक समय की बात कहती हूँ। एक दिन एक जाट (किसान) प्रातः अपनी धेनु चराने जंगल में गया। वहाँ जाकर उसकी एक गाय अचानक मर गई। उसे गाय के मरने का कारण मालूम नहीं हुआ। वह गाय का मुख बार–बार उठाता और रो–रोकर उसे गले लगाता। उन्हीं दिनों उसी जंगल में सिद्ध मस्तनाथजी तप कर रहे थे। वह दुःखी होकर बार–बार उनका स्मरण करने लगा। जब धेनु किसी प्रकार भी नहीं उठी तो वह स्वयं नाथजी के पास जाकर विनती करने लगा कि हे भगवन् ! मेरी एक गौ किसी यमदूत ने मार दी है। आज सवेरे मैं गाय चराने आया था। घर पर गाय बिल्कुल ठीक थी परन्तु घास चरते–चरते मेरी गाय अचानक मर गई। मैं उसकी बहुत सेवा–टहल किया करता था। मेरी जीविका का वही सहारा थी। अब बिना दूध के मेरे बालकों का गुजारा कैसे होगा ? आपके लिए कुछ भी करना मुश्किल नहीं है क्योंकि आपने ही अंधे को दृष्टि, पंगु नारी को पाँव

तथा बांझ स्त्रियों को सन्तानें दी हैं। तुमने ही वर्षा कराकर सूखी नदियों में जल प्रवाहित कर दिया है। अतः हे करुणानिधान ! मुझ दीन पर भी कृपा करो और मेरी गाय को जीवित कर दो।

उस भक्त की इस प्रकार की करुण पुकार सुनकर बाबा ने उस दुष्ट यवन के कार्य को जानकर पूर्वकाल में जैसे मार्कण्डेय ऋषि की प्रार्थना से भगवान् शंकर ने यमराज का मान भंग किया था, उसी प्रकार उस दुष्ट यमदूत का मान भंग कर दिया और तत्क्षण ही एक मुट्ठी भरके विभूति (भभूति) **'नाथ निरंजन गोरक्ष देवा'** कहकर उस गाय की ओर फेंक दी। ऐसा करते ही उस गौ के प्राण लौट आए और वह उठकर घास चरने लगी। तब नाथजी ने कहा कि भक्त ! हमारा वचन सुनो ! तुम्हारी गाय जीवित है। जल्दी जाकर देख लो। जैसे यम ने पहले सत्यवान् के शरीर में प्राण डाल दिये थे, वैसे ही बाबा ने गौ के शरीर में भी जीवात्मा का प्रवेश करा दिया।

गुरु का वचन मानकर वह धीर पुरुष गौ के पास गया तो उसे उसने घास चरते पाया। उसे जीवित देखकर वह जाट बहुत प्रसन्न हुआ और वह अपनी गाय को लेकर नाथजी के पास गया। उन्हें साष्टांग प्रणाम कर उनकी महिमा का बखान करने लगा कि

ऋषि, मुनि, तुम्हारा नित्य ध्यान लगाते हैं और तुमसे मनवांछित फल पाते हैं। तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। सिद्धजन भी तुम्हारी पूजा करते हैं। ऐसे आपने मुझ पर बहुत अधिक कृपा की है।

इस प्रकार बार–बार कहकर उनके चरणों की धूलि को सिर पर लगाने लगा। इसके बाद वह गाय को लेकर अपने घर चला गया। वहाँ जाकर भी वह सबके सामने आनन्दित हो बाबा की कीर्ति का फिर से बखान करने लगा कि नाथजी ने मेरी मरी हुई गाय जिला दी। बाबा की इस बात को सुनकर घर–घर चर्चा होने लगी कि नाथजी की माया निराली है, उसे तीनों लोकों में कोई नहीं जान पाया और फिर प्रसन्न होकर गौओं का बहुत सारा दूध इकट्ठा करके उसकी खीर बनाकर योगिजनों को बड़े आदर के साथ खिलाई। बाकी बची खीर को उसने स्वयं खा लिया। उस दिव्य खीर को खाने से उस गोप की धर्मकार्यों में रुचि बढ़ गई और उसका मन भी भक्ति में लग गया। उसे विश्वास हो गया कि बाबा साक्षात् शिवरूप हैं। नहीं तो मरे हुए को कौन जिला सकता है। वह गोप जब तक जीवित रहा तब तक बाबा की मूर्ति की पूजा करता रहा।

इस संसार में जो भक्तों के कष्ट दूर करने में समर्थ हो वही वस्तुतः महात्मा कहा

जाता है और जिसका जन्म विलक्षण हो और मरण भी न हो, उसी को साक्षात् परमेश्वर कहा जाता है। यूँ तो सभी अपने शरीर में ईश्वर बनना चाहते हैं। जो साधु दोषरहित वेदों, स्मृतियों तथा शास्त्रों में कठिनतारूप दोष लगाकर पढ़ने में अरुचि पैदा करते हैं अर्थात् बहुत से अविवेकी साधु कहा करते हैं कि पढ़ने से क्या होता है, केवल साधु बन जाने से ही सब कुछ मिल जाता है तो ऐसे दुष्टोपदेशों (गलत उपदेशों) से वे देश के लोगों को आलसी बनाकर नष्ट कर रहे हैं अथवा उन्हें विनाश के गर्त की ओर धकेल रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग वेदादि शास्त्रों के विचार तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण व महात्माओं के वचनों को त्यागकर दुष्टोपदेश सुनते हैं वे वास्तव में अपने को काँटों में डालते हैं और वह व्यक्ति भी कृतघ्न है जो स्वयं को उपदेश देनेवाले गुरु का अनादर करता है। अतः जिस बाबा ने अपनी योगशक्ति से अन्धे को आँखें, पंगु को पैर दिये और मरी हुई गौ को फिर जीवित कर दिया और न जाने कितने ही अन्यान्य विलक्षण कार्य किये। मानना पड़ेगा कि वे सर्व–शक्तिमान् ईश्वर ही थे अन्यथा मानव ऐसे कार्य कदापि नहीं कर सकता। उन्हीं की पूजा–अर्चना करनी चाहिए। निराकार होते हुए भी वे आज भी अपनी अद्‌भुत लीला दिखाते रहते हैं।

।। श्रीमस्तनाथचरित में कपिला जीवन–दान नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।

सोलहवाँ अध्याय

जो महादेव इस सृष्टि का संहार करने के कारण रुद्ररूप धारण कर लेते हैं वही गोरक्ष रूप से अवतार लेकर पृथ्वी पर धर्म का प्रचार करते हैं। उन्हीं गोरक्ष का अवतार श्री मस्तनाथजी हुए जो अब तक संसार को धर्म का उपदेश देते रहे।

रोहतक जिले में एक झज्जर नाम का नगर है। उसमें किसी समय सनातन धर्म के अनुयायी व ईश्वर की भक्ति में लीन रहने वाले व्यक्ति रहते थे। वहाँ पर एक बार घूमते-घूमते मस्तनाथजी जा पहुँचे। उस नगर के नजदीक ही हिंसक जन्तुओं व अनेक प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ एक बीहड़ जंगल था। उसमें अनेक प्रकार के पुष्प एवं कन्दमूल थे। झरनों, तालाबों, बावड़ियों तथा कूपों के जल से वह जंगल रमणीक बन गया था। वह अनेक प्रकार के वृक्षों जैसे-अशोक, मौलसरी, कदम्ब, कटहर, कचनार, आम इत्यादि से हराभरा एवं शीतल था। वहाँ पर हरिण तथा उनके बच्चे झुंड बनाकर इधर-उधर फुदकते फिरते थे। ऐसे उस भयानक जंगल में उस वन को अपने आगमन से पवित्र करने तथा लोगों को कुछ कल्याणकारक उपदेश देने के लिए मस्तनाथजी जा पहुँचे। वहाँ जंगली

फूलों से सुगन्धित एवं शीतल पवन बह रही था। वहीं पर एक वृक्ष की गहरी छाया देखकर उसके नीचे बैठकर होम मन्त्र–तन्त्र तथा जपादि करते हुए तप करने लगे। तब वहाँ के भूत, राक्षस, पिशाच, नाग देवता तथा सिद्धगण मनुष्य का रूप धारण करके तपस्या में लीन बाबा की सेवा करने लगे और वे कुछ भी उपद्रव नहीं करते थे। अनेक प्रकार के रोग, शोक, प्लेग, डाकिनी तथा भैरव– ये सब भी बाबा की आज्ञा के बिना किसी को तकलीफ नहीं देते थे। यमराज और उनके दूत जिसकी सेवा करते हैं उसे रुद्र कहते हैं और मस्तनाथजी की आज्ञा में ये सब रहते थे। अतः वे रुद्रावतार थे।

उस झज्जर नगर में एक सरदार रहता था। वह शिकार का बड़ा शौकीन था। वह केवल पुरुषार्थ पर विश्वास करता था और देवपूजन में उसकी श्रद्धा नहीं थी। एक बार बाबा ने सोचा कि इसे इस हिंसा की वृत्ति से हटाकर अच्छे मार्ग पर लाना चाहिए ऐसा विचार कर उन्होंने एक सुनहरे हरिण का रूप धारण किया। जिसके पैर सफेद रंग के थे। उसके सींग पैने थे। वह कभी दौड़ता तो कभी गिर पड़ता। वह इधर–उधर घूमने लगा। उसी समय वह सरदार जंगल में शिकार खेलने आया और हरिण को देखते ही उसके पैर के ऊपर एक बाण चलाया। उस बाण के लगते ही माया मृग रूपधारी मस्तनाथजी पैर

से खून टपकते हुए उस घायल शरीर को एक वृक्ष की आड़ में छोड़कर अपने धूने पर जाकर पहले के समान बैठ गए और पैर से जो खून निकल रहा था उसे पेड़ के पत्तों से पोंछने लगे। उस हरिण को ढूंढता हुआ रुधिर की धारा का पीछा करता हुआ वह शिकारी सरदार भी उसी वृक्ष के नजदीक आ पहुँचा, जहाँ मस्तनाथजी बैठे थे। उनके पैर से खून निकल रहा था। लोग कहते हैं कि पहले गोलोक की यात्रा करने निकले श्रीकृष्ण के पैर में जैसे एक व्याध (शिकारी) ने तीर मारा था उसी तरह बाबा के पैर में उस सरदार ने बाण मारा था। वह शिकारी बाबा को इस हालत में देखकर कहने लगा कि यही महात्मन् मृगरूप में थे। उसने बाण के चिह्न को और अपने बाण को भी पहचान लिया। जैसे पूर्वकाल में राजा दशरथ ने हाथी के धोखे में श्रवणकुमार को तीर मार दिया था और बाद में पछताना पड़ा, उसी प्रकार सरदार बाबा को इस हालत में देखकर बहुत पछताया और शस्त्र फेंककर क्षमायाचना करता हुआ बाबा के चरणों में गिर पड़ा तथा प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो ! मैं मूर्ख हूँ, आप जैसी दिव्य दृष्टि मेरी नहीं है। देवों के देव ! आप मेरे गुरु हैं। आप मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें। आपको न पहचानने के कारण ही मुझसे यह अपराध हुआ है। वन में बहुत से हरिण होते हैं और किसको यह कैसे पता चले कि उस हरिण का

रूप धारण करने वाले आप ही हैं। हे जगदीश्वर ! आप अपने इस प्रकार के अद्भुत ज्ञान का मुझे उपदेश दें क्योंकि बिना उपदेश के मैं आपकी महिमा को नहीं जान सकता। जैसे लकड़ी के भीतर छिपी हुई अग्नि को कोई नहीं जान सकता। ईश्वर सब जगह विद्यमान है, ऐसा वेद–शास्त्रादि कहते हैं फिर भी गुरु के वचन से ही उसे शिष्य जान पाता है, स्वयं नहीं।

इस प्रकार उसके बार–बार स्तुति करने पर बाबा मस्तनाथजी कहने लगे कि तुम डरो मत और धीरज रखो। मैंने तुम्हें अपना स्वरूप नहीं समझाया था, इस कारण तुमसे यह गलती हुई है। आगे से इस प्रकार अज्ञानतापूर्वक शिकार मत खेलना। जब तुम किसी जानवर पर बाण चलाओ तो पहले यह प्रार्थना कर लिया करो कि हे मेरे शिकार ! तुम मनुष्य हो या नहीं। यदि मनुष्य हो तो भाग जाओ और मनुष्य नहीं हो तो खड़े रहो। वीर पुरुष छोटे प्राणी के साथ कभी युद्ध नहीं करता और सिंह को छोड़कर हरिण के बच्चों पर प्रहार करना तुम जैसे वीर को शोभा नहीं देता। शास्त्रज्ञान के बिना भाग्यवादी पुरुष भी हमेशा पाप कमाते हैं क्योंकि पाप और पुण्य का फैसला तो शास्त्र ही कर सकता है। मनमानी करने से जरूर पाप होता है। वे पापी किसी कारण से यदि देवता भी बन जायेंगे

तो भी उन्हें पूर्वजन्म में किये गए पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। अपना भाग्य जानने के लिए ही मेरी मृगरूप धारण करने की इच्छा हुई और उधर तुम्हारी शिकारी की इच्छा हुई परन्तु जो भाग्य में होता है वही फलता है। इस प्रकार समझाने के पश्चात् उस सरदार की पश्चात्ताप की अग्नि शान्त होगई और उसने जान लिया कि कभी–कभी पुरुषार्थ से भाग्य प्रबल हो जाता है क्योंकि ईश्वर की इच्छा बलवती होती है।

तदनन्तर शान्त हो प्रार्थना करते हुए सरदार ने फिर कहा कि हे स्वामी ! पूर्वजन्म में किए गए कर्म (भाग्य–कर्मफल) का नाम प्रारब्ध है। उसे किसी प्रकार हटाया नहीं जा सकता। अतः उसे हटाने के लिए कोई प्रायश्चित्त मुझे बताइए। आप धन, मकान, देवमन्दिर तथा कोई सुख का साधन जो आपको पसन्द हो, कृपया मुझे बताइए ताकि मैं उसे यथाशक्ति आपको दे सकूँ। यज्ञ, दान, तप, जप, योगियों की पूजा, सज्जनों की सेवा, सत्पात्र में दान, रोगी, अन्धे आदि व्यक्तियों को भोजन देना इत्यादि जो आप कहेंगे वही मैं करूंगा। उसके इस वचन को सुनकर गुरुदेव मस्तनाथजी कहने लगे कि मुझे इनमें से कुछ भी नहीं चाहिए क्योंकि मैं तुम्हारे द्वारा दी गई इन चीजों से अपने को लोभ, मोह, महाक्रोध रूपी अन्धकार में गिराना नहीं चाहता। बाबा के इस वचन को सुनकर वह सरदार

समझ गया कि इस साधु का उद्देश्य किसी गरीब व कमजोर को पीड़ा पहुँचाना नहीं है। फिर वह आश्वस्त हो बाबा को प्रणाम करके अपने घर चला गया। घर जाकर सरदार ने सारा वृत्तान्त नगरवासियों को सुनाया, जिसके सुनने से लोगों ने हिंसा को छोड़ दिया और वे धर्म में संलग्न होगए। इस प्रकार बाबा ने सरदार के माध्यम से सभी को यह उपदेश दिया है कि किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

।। श्रीमस्तनाथचरित में बाबा की मृगलीला एवं जीवहिंसानिषेध नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।।

सतरहवाँ अध्याय

मस्तनाथबाबा के समान दयालु और दूसरा गुरु नहीं है जिनके स्मरणमात्र से ही करोड़ों विघ्न दूर हो जाते हैं।

पहले जिस सर्वशिरोमणि राजा ने समय के अनुकूल होने के कारण यवनों के छक्के छुड़ा दिये थे। बाद में समय विपरीत होने के कारण यवनों के प्रभाव से आर्यसभ्यता व हिन्दू सभ्यता का ह्रास होने लगा और भारत में यवनों का प्रभुत्व बढ़ता ही गया। उस समय की आर्यसभ्यता की दुर्दशा कहाँ तक कहें। सभी देवमन्दिर गिरा दिए गए और उनमें रक्खी हुई मूर्तियाँ तोड़ दी गईं, तीर्थों को अपवित्र कर दिया, योगियों, संन्यासियों व ब्राह्मणवर्ग को अग्निपुञ्ज में धकेल दिया और मार दिया। ब्राह्मणों की कन्याओं का अपहरण कर लिया गया और उन्हें दासी के रूप में रक्खा जाने लगा। आर्यों के प्रदेश नष्ट कर दिये गए। इस प्रकार भारत में सब जगह यवनों का साम्राज्य हो गया और हिन्दुत्व की दयनीय दशा होगई। वे अत्याचारों से पीड़ित हो 'त्राहि माम्' (मुझे बचाओ) 'त्राहि माम्' करने लगे। कुछ लोग आत्मरक्षा के विचार से अपने धर्म का परित्याग करके युद्ध के लिए तत्पर होगए और

कुछ पूजनीय सिद्ध व सन्तों ने अपने शुभ संकल्पों का त्याग कर दिया। अर्थात् भय के कारण अपने कर्त्तव्य कर्म को छोड़ दिया। उस समय सभी को अपनी प्राणरक्षा की पड़ी हुई थी। लोग रात्रि को वेश्याओं के पास बिताने लगे और इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा भी न कर सके। हिन्दुओं के इतिहास में गुण होते हुए भी दोष निकाले गए। इनके सन्तों की सिद्धियों में भी यवनों ने दोषारोपण किया तथा द्वेष के कारण सत्य को भी छिपा दिया गया। हमारे ग्रन्थों के प्रति लोगों की आस्था समाप्त कर दी गई। इस प्रकार दैवी शक्ति का निरादर करके मानवीशक्ति का आश्रय ले लिया गया जिसके कारण आर्यसंस्कृति का विनाश होता चला गया, इस विषय में बिल्कुल संदेह नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इसीलिए ही भक्ति सबको सुख देने वाली होती है तथा श्रेष्ठ, निकृष्ट एवं मध्यमवर्गीय, सभी व्यक्तियों को अलौकिक भाव देती है।

इसी खलबली में एक बार मस्तनाथजी समस्त प्रदेशों में घूमते हुए अपनी शिष्यमण्डली के साथ दिल्ली नगर में जा पहुँचे। वहाँ पञ्चकुइयों के पास जाकर अपना धूना लगा लिया। वहाँ वह बुद्धिमान् सन्त अत्यन्त धैर्यशाली एवं मन्त्र जपने वाले तपस्वियों के साथ रस[1]

---

१. 'रस' से यहाँ छः की संख्या अभिप्रेत है।

सहित तीस तत्त्वों (३६) के चिन्तन एवं जाप करने में संलग्न होगए अथवा ध्यानमग्न होगए। तब दिगम्बरधारी, जटाधारी तपस्वी गुरु मस्तनाथजी के चारों तरफ हिन्दू तथा मुसलमान आकर बैठ गए और उनकी स्तुति करने लगे।

उस समय आलमशाह दिल्ली का बादशाह था। वह सबके साथ समान व्यवहार नहीं करता था। जिस कारण उनके राज्य में मुसलमानों का अधिक आदर था और ब्राह्मणों का निरादर होता था। इसी वज़ह से कुछ ब्राह्मणों ने स्वार्थ के अधीन होकर अपने धर्म को छोड़कर म्लेच्छ धर्म को स्वीकार कर लिया था। अतः वे न इधर के रहे और न उधर के। अर्थात् 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' वाली कहावत उन पर चरितार्थ होने लगी थी। जब बादशाह ने सुना कि ये मस्तनाथजी सिद्ध हैं तब उसने मन्त्रियों से विचार–विमर्श किया। उस समय सभा में पारसी भाषा तथा संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे और विशेष ज्ञान में दक्ष व्यक्ति विद्यमान थे। सिद्ध को देखने के इच्छुक राजा ने कहा कि यह कैसा सिद्ध है और कहाँ से आया है ? ऐसा सुना जाता है कि वह नंगा साधु तपस्याओं का भण्डार है। उसके दर्शन हमें करने चाहिएं अथवा नहीं ? राजा का जिज्ञासापूर्ण वचन सुनकर नीति एवं ज्योतिष शास्त्र के वेत्ता एवं धर्म के जाननेवाले विद्वानों ने निश्चय कर राजा को कहा कि

हम लोगों का विचार हिन्दू धर्म के अनुसार है।अतः मुस्लिम धर्म के ठेकेदार मौलवियों द्वारा ही इस समय राजधर्म का विचार किया जाना चाहिए। उसे सुनकर मौलवियों ने कहा कि कुरान कहती है कि नंगे का दर्शन नहीं करना चाहिए। अतः वेदों की जो बातें कुरान के अनुकूल हैं वहीं हमें माननी चाहिएं बाकी नहीं। होनहार बलवान् होती है। अतः राजा ने मौलवियों की बात मान ली और उस सिद्ध की परीक्षा लेने के लिए कुछ भोज्य पदार्थ एवं वस्त्रादि दक्षिणा के साथ एक सेवक को बाबा के पास भेजा। बाबा ने उस सामग्री को ले लिया और धूने की अग्नि में डाल दिया। सेवक ने लौटकर राजा को सारा हाल सुनाया तो राजा को बहुत क्रोध आया और उसने मन्त्री को पुनः यह कहकर भेजा कि उस सिद्ध से हमारा दुशाला आदि वापिस मांगकर लाओ। तब उस मन्त्री ने पुनः मस्तनाथजी के पास जाकर राजा के आदेश को सुनाया कि मेरा अनादर करके जो दुशाला तुमने अग्नि में फेंक दिया है उसे वापिस दे दो। इसे सुनकर योगबल से राजा की भावी होनहार को देखकर बाबा के नेत्र क्रोध से लाल होगए और उन्होंने धूने से वैसे ही दुशालों का ढेर मन्त्री के सामने लगा दिया और कहा कि राजा से जाकर कह दो कि इनमें से अपना दुशाला पहचानकर ले जावे और किसी ब्राह्मण को दान कर देवे। यदि हम राजा के पास भिक्षा के

लिए जाते और वह हमारा सम्मान करता तब तो उसे हमारी परीक्षा लेने का हक था परन्तु उसकी बुद्धि विपरीत होगई है। नम्रभाव से जो सिद्धों की परीक्षा की जाती है वह सब पापों का नाश करने वाली होती है और जो परीक्षा अहंकार से की जाती है वह अनर्थकारी होती है। क्या राजा के लिए यह वस्त्र दुर्लभ था जो वापिस मंगवाया। वस्त्र तो प्रत्येक देश में मिल जाता है परन्तु सिद्ध पुरुष कभी कभार मिला करते हैं। अतः राजा सिद्ध के बराबर नहीं हो सकता। धार्मिक पण्डित, योगिजन तथा सिद्धों की सब जगह पूजा होती है जबकि राजा तो अपने ही देश में आदर पाता है और जिस तलवार पर तुम्हें अहंकार है वह तुम्हारा विनाश करने वाली है। तुमने क्योंकि पूजनीयों में अधिक पूजनीय की परीक्षा नहीं अपितु अपमान किया है। शाप अथवा कृपा भी परब्रह्म के ही अधीन होती है। वह जो चाहेगा वही हमारे मुख से निकलेगा। पूर्वकाल में नहुष, रावण, वेन तथा वल्लाल–इन सब राजाओं को सिद्धों का अनादर करने के कारण बहुत अधिक कष्ट उठाने पड़े। कपिलमुनि के अपमान से सगर के साठ हजार पुत्र क्षण भर में ही भस्म होगए जिनका उद्धार करने के लिए भगीरथ को गंगा को पृथ्वी पर लाना पड़ा।

बाबा के इस प्रकार के वचनों को मंत्री हतप्रभ की भाँति सुनता रहा और चुपचाप

वस्त्रों को ले जाकर राजा के सामने रख दिया और सारा हाल सच्चा–सच्चा सुना दिया। राजा भी उसे सुनकर अपने भाग्य को कोसने लगा। वहाँ सभा में जो सिद्धों का आदर करने वाले राजनीतिज्ञ उपस्थित थे उन्होंने समझा कि राजा ने सब वस्त्र वापिस मंगवा लिए हैं। इसीलिए राजा को उस सिद्ध का शाप लग गया है। अतः अब यह राजा नष्ट हो जायेगा।

अपमानित हुए मस्तनाथजी ने तब सब योगियों को आज्ञा दी कि उलटा नाद बजाओ। तब सबने बजाया परन्तु कीर्तिनाथ ने नहीं बजाया। शिष्यों ने जाकर गुरु को सब हाल सुनाया। तब गुरु ने कीर्तिनाथ से पूछा–तुमने शंख नहीं बजाया। तब शिष्य ने कहा कि मुझे संदेह है कि आगे क्या होनेवाला है ? इसलिए नहीं बजाया। आज लव–कुश, महारथी भीष्म, पार्थ और उनके पुत्र, सात–सात महारथियों से अकेला युद्ध करने वाला सुभद्रापुत्र अभिमन्यु इत्यादि क्षत्रिय विद्यमान नहीं हैं तथा अपने धर्म से प्रीति रखने वाले युधिष्ठिर आदि के समान राजा भूतल पर नहीं हैं। न ही अत्याचारियों से मुक्त कराने वाले श्रीकृष्ण हैं और न वीरश्रेष्ठ पृथ्वीराज चौहान हैं। तब न्याय–नीतियुक्त राज्यलक्ष्मी किसके आश्रय पर रहेगी ? वीरता और धैर्य का बिल्कुल अभाव होगया है। राजा लोग नाच–रागों से प्रीति रखते हैं और शस्त्रविद्या तथा शास्त्रों से विमुख होते जा रहे हैं। अतः मुसलमानराज भी अब

नष्टप्रायः हो गया तो फिर राज्य कौन करेगा। अब तो जिसके हाथ में छलकपट की तलवार होगी, राज्यलक्ष्मी उसी के अधीन रहेगी। जिस राजा को देखकर शत्रुसेना नहीं भागती, उसके पास राज्यलक्ष्मी नहीं रहती क्योंकि **'वीरभोग्या वसुन्धरा'** होती है। यह सुनकर मस्तनाथजी ने कीर्तिनाथ को कहा–तू राज की चिन्ता मत कर। अब हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का राज्य होगा। इसके बाद बाबा अपनी शिष्य–मण्डली के साथ अन्यत्र चले गए परन्तु फिर राजा के शुभचिन्तक सभासदों ने राजा से उनके पाप की निवृत्ति के लिए बाबा से प्रार्थना करने के लिए कहा। तब राजा ने उनको ढूंढने के लिए अपने दूतों को भेजा परन्तु वे नहीं मिले क्योंकि जो समय पर अपने कर्त्तव्य कर्म को नहीं करते, उनके कार्य कभी सिद्ध नहीं होते। उन्हें बाद में पछताना पड़ता है।

उस समय उस बादशाह का एक अत्यन्त अहंकारी कादिर नाम का मन्त्री था। वह सदा बादशाह का आज्ञाकारी था और उनके पास दिल्ली में ही रहता था, परन्तु सिद्ध मस्तनाथजी के शाप के प्रभाव के कारण उसकी मति (बुद्धि) विपरीत होगई और उसने राज्य की सत्ता के लोभ के कारण एक दिन सैनिकों को आज्ञा देकर बादशाह को बन्दी बनाकर, खंजर से उसकी आंखें निकलवाकर उसे कैदखाने में डलवा दिया। कादिर के

उस दुष्कृत्य को देखकर देहली की सारी प्रजा उत्तेजित होगई और चारों तरफ गदर मच गया। देहली की हालत तथा हिन्दू–मुस्लिम के परस्पर वैमनस्य को देखकर अंग्रेजों ने गदर को दबा दिया और मौका पाकर इन्द्रप्रस्थ को अपने कब्जे में कर लिया।[1]

यह बात समस्त संसार को विदित है कि गुरुनाथ की लीला को कोई नहीं जान सकता। वे राई से पर्वत बना दें और क्षणभर में ही पर्वत से राई बना दें। वे निरंजननाथ घर–घर में व्याप्त हैं। दया के सागर हैं, दुःख के सागर से पार उतारने वाले हैं। ऐसे उनको कोई–कोई विवेकी सन्त जान पाता है परन्तु मूर्ख व्यक्ति उन्हें नहीं जान पाता। यही कारण है कि मुसलमान शासक ने अपनी मूर्खता के कारण उनकी महिमा को नहीं पहचाना और अज्ञानतावश उनका उपमान किया जिसका परिणाम सारी प्रजा को भुगतना पड़ा।

।। श्रीमस्तनाथचरित में आलमशाह को परचा देना अर्थात् यवनराज्यपरिवर्तन नामक सतरहवाँ अध्याय समाप्त।।

---

१. और लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेज भारत पर राज करते रहे और देशभक्तों के अथक प्रयासों के कारण अंग्रेजों के अत्याचारों से भारत 1947 ई० में आजादी पाकर शान्ति से जी रहा है।

अठारहवाँ अध्याय

जगत् के नाथ (स्वामी), ब्रह्माण्ड के नाथ, देवों के नाथ, गुरु एवं शिष्य के नाथ, सिद्धों के नाथ, हठयोग के प्रवर्तक श्रीगोरक्षनाथजी को मैं निरन्तर नमन करती हूं। ऐसे गोरक्षजी के अवतार श्रीमस्तनाथजी की माया अथवा महामाया को कौन जान सका ? यदि किसी ने जान भी लिया तो क्या उसे शब्दों में ढाल सका। अपने पूर्वजन्म के संस्कार के बिना कोई भी व्यक्ति न तो अच्छा काम करता है और न ही बुरा। अतः मस्तनाथजी के द्वारा जो कार्य किए गए, उन्हें लोग प्रमाणित मानते हैं क्योंकि जो जगत् के आधार का आश्रय लेकर कार्य करता है वह जगत् का आधार ही होता है। अतः उन सिद्ध मस्तनाथजी का निरादर करने के कारण हिन्दुओं से द्वेष रखने वाले यवन विनाश को प्राप्त हुए जैसे पूर्वकाल में शिव का अनादर करने के कारण दक्ष प्रजापति नष्ट हो गया था। जिस प्रकार जर्जर शरीर वाले व्यक्ति को मन की चिन्ता रोग उत्पन्न कर देती है और अन्त में रोगों से मरे हुए शरीर को जलाने के पश्चात् स्त्री, पुत्रादि भी छोड़ देते हैं तो चिन्तायुक्त राजा को राज्यलक्ष्मी कैसे अपनायेगी ? भूत, वर्तमान और भविष्यत्–इन तीनों कालों का ज्ञान रखने वाले तथा सूर्य, चन्द्रमादि नवग्रहों की गति को जाननेवाले ज्योतिषियों के वचन को जिस राजा ने नहीं

माना उसका कल्याणमार्ग अवरुद्ध हो गया। धर्म मुसलमानों का हो अथवा हिन्दुओं का सब उनके प्रवर्तकों ने राग–द्वेष से रहित होकर कहा है परन्तु जो अपने स्वार्थ के वश होकर उनमें अपनी ओर से फेर बदल कर लोगों के सामने प्रस्तुत करते हैं तो उससे भी मानव के कल्याण का मार्ग अवरुद्ध (रुक) हो जाता है। ऐसे राजा का भी विनाश हो जाता है जो सद्‌गुरु की बात न मानकर स्वार्थी गुरु की बात धर्म–संकीर्णता के कारण मान लेता है। सभी धर्मों में कुछ ऐसे ही स्वार्थी धूर्त पैदा हो जाते हैं जो लोभी हैं, हिंसक हैं, दूसरों का धन एवं स्त्री का हरण करने वाले, गुणियों की संगति से कोसों दूर रहने वाले, चुगलखोर, दूसरों का अहित (बुरा) करने में लगे हुए हैं, वे राज्यलक्ष्मी का नाश कर देते हैं।

इसके अतिरिक्त जिन्होंने समस्त पृथ्वी को जीतकर भी स्वयं पुरोहित का ही कार्य किया और ईश्वर की आराधना में ही समय बिताया तथा विपत्ति आने पर अपना पुत्र देकर भी राजवंश की रक्षा की, ऐसे पुरोहितों का अपमान होने पर राजा को राज्यलक्ष्मी छोड़ देती है। जिन ब्राह्मणों (विद्वानों) से सब प्रकार की समृद्धियाँ उपलब्ध होती हैं और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है ऐसे ब्राह्मणों का जो अपमान करता है उस राजा का राजपद समूल नष्ट हो जाता है।

वैदिक वाङ्मय में जिस भक्ति का उल्लेख किया गया है, वह भक्ति सभी भक्तियों में श्रेष्ठ बताई गई है, वहाँ (मुगलकाल में) मस्तनाथजी ने गुरुभक्ति से रहित प्रजा को भी उसी वैदिकभक्ति की शिक्षा दी। वही तपस्याओं का भण्डार सिद्ध मस्तनाथजी एक बार पचोपा नामक गाँव के समीप गए और वहाँ के निवासियों ने उनका खूब सत्कार किया। उस गाँव में एक देवीदास नाम का साधु बहुत दिनों से रहता था। अतः पुरवासियों ने उसके पास जाकर कहा कि एक सिद्ध नागे पीर गाँव में आए हैं। अतः आप बताइए कि हम उनकी पूजा किस प्रकार करें। लोगों के श्रद्धायुक्त वचन सुनकर गुणों के ईर्ष्यालु उस साधु ने कहा कि उसके पास मंत्रजपादि से उत्पन्न सिद्धि नहीं है अपितु पाखण्ड छल कपटादि से लोगों को वश में कर रखा है। ब्राह्मणों में जो श्रेष्ठ हैं, पवित्र आचरण वाले हैं, लोकव्यवहार को जानते हैं, वे ही सन्त पूजन की विधि जानते हैं दूसरे कुटिल लोग नहीं। अतः उस कुटिल देवीदास ने सिद्ध मस्तनाथजी की पूजा नहीं की जबकि उसने बाबा की सिद्धियों के विषय में सुन भी रखा था, फिर भी लोगों को कहा कि पहले उनकी सिद्धियों की परीक्षा लो, बाद में उनकी अर्चना करना। देवीदास की बात मानकर वे भूखे लोग दो–दो, तीन–तीन दिन के अन्तराल से बाबा के पास जाते और भाँति–भाँति के प्रश्न करके, जैसे मेरे पुत्र होगा,

मुझे धन मिलेगा, मेरा कार्य अवश्य सफल हो, मुझे विद्या मिले; इस प्रकार मनमाने पदार्थ बाबा से माँगकर उनकी सिद्धियों की परीक्षा लेते परन्तु सेवा–अर्चना कुछ भी नहीं करते। रुपये–पैसे की बाजी लगाना जुआ कहा जाता है जबकि सिद्धियाँ वैसी नहीं होती। उनके विषय में किसी प्रकार की शर्त नहीं लगानी चाहिए। मस्तनाथजी ने इतना होने पर भी उन लोगों को अपनी पूजा के विषय में कुछ नहीं कहा। फिर भी द्वेषी देवीदास ने साधुओं के साथ द्रोह करने के लिए गाँव के प्रधान को उकसाया। तब प्रधान ने गाँववालों को आज्ञा दे दी कि जो साधुओं की पूजा करेगा उसे दण्ड मिलेगा, परन्तु धर्मात्मा किसी सज्जन व्यक्ति ने यह सारा वृत्तान्त बाबा को जाकर बता दिया। उसे सुनकर सिद्ध मस्तनाथजी उस गाँव को छोड़कर उसके समीपवर्ती जंगल में चले गए। वहाँ जाकर नाथजी ने उस सज्जन से कहा कि अपने घर का सारा सामान जल्दी निकाल लाओ, यह गाँव शीघ्र ही अग्नि से दग्ध हो जायेगा। उस सज्जन ने नाथजी के हितकारी औषधि के समान, परिणाम में सुख देने वाले सद्‌वचन को 'वैसा ही होगा', यह कहकर मान लिया और गाँव की ओर लौट चला। जब वह गाँव के निकट पहुँचा तो उसने देखा कि एक बिल्ली अपने बच्चे को मुँह में दबाए गाँव से तेजी से निकल रही है। वह व्यक्ति समझ गया कि यह विनाश का प्रतीक

है और उसने अपने परिजनों को यह बिल्ली वाली बात तथा बाबा का कथन बताया कि यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इस गाँव से सामान सहित बाहर निकल चलो। तब वे उन्हें देखकर हंसी करने लगे परन्तु उसने बाबा के वचन से अपना सारा परिवार, पशु व सामान ले जाकर नाथजी के समीप जंगल में बसेरा कर लिया।

उसके बाहर निकलते ही वह सारा गाँव अग्नि से धायं–धायं करके जल उठा। अग्नि की लपटों का प्रकाश चारों ओर फैल गया। उस समय घौंसलों में बैठे हुए कबूतर व तोते के बच्चे और बालक तथा बालिकाएँ सब अग्नि से संतप्त हो विलाप करने लगे। स्त्रियाँ–पुरुष नग्न हो, अपनी जान बचाने इधर–उधर भागने लगे। बड़े–बड़े महल, घर और मनोहर देवमन्दिर सबके सब खण्डित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भवनों के भीतर रखे हुए मणि–मूंगा, मोती आदि सब रत्न जलकर भस्म होगए। उस समय ग्राम काले रंग का नवीन पहाड़ सा प्रतीत होता था। देवीदास ने बहुत से मंत्र तंत्रों का प्रयोग किया और अपनी सिद्धियों का भी सहारा लिया परन्तु सब की सब निष्फल रही। अतः उसको इतनी लज्जा महसूस हुई कि वह जीता हुआ भी मरे के समान होगया और अपमान के कारण रोने लगा। उसे देखकर यह प्रत्यक्ष होगया कि भाषा के ज्ञान का आडम्बर करने वाले, देवताओं,

सिद्धों, सज्जनों और भक्ति की निन्दा करने वाले धूर्त्तों द्वारा लोग नष्ट करा दिए गए; इस प्रकार बोलते हुए उन लोगों ने मस्तनाथजी के क्रोध को शान्त करने के लिए प्रार्थना की। प्रार्थना करते ही अग्नि शान्त होने लगी। तब अदृष्टपूर्व देहधारी तेजस्वी नाथजी को देखकर लोग उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर स्तुति करने लगे कि हे नाथ ! हमारी रक्षा करो ! रक्षा करो ! आप ही अपने शिष्यों को योगमार्ग का उपदेश देकर अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियों का विस्तार करते हुए समस्त संसार में अपने यश का विस्तार कर रहे हो तथा जनता में ज्ञान एवं योग की शिक्षा का उपदेश देते हो।

उस गाँव में पहले भी कभी अग्निजन्य क्षति (हानि) नहीं हुई थी और अब भी नहीं हुई। भ्रान्ति के द्वारा बुद्धि भ्रमित हो जाने से लोगों को ऐसा महसूस होने लगा था; यह सब सिद्धि का ही प्रभाव था क्योंकि सिद्धों के वाक्य से अग्नि ठण्डा और अनग्नि (जलादि) में उस अग्नि का दर्शन भी हो सकता है। बीज अपने नाम वाले वृक्ष का विस्तार करता है, जनता अपने भाग्य को सफल करती है परन्तु योगी परिणामफल का परिवर्तन भी कर सकता है। इसीलिए लोग बीजादिकों से अधिक फलदायी सिद्धों की सेवा करते हैं। ज्ञानी और योगी–ये दोनों महत्त्व की दृष्टि से समान माने गए हैं। जहाँ योगी योग से परमधाम को

प्राप्त कर लेता है। जबकि भक्त उस व्यापक परमात्मा को स्वयं प्राप्त कर लेता है और ज्ञानी ज्ञान के कारण मन की निर्मलता को प्राप्त होता है। कहने का भाव यह है कि भक्ति के बिना ईश्वर के प्रति लगाव नहीं हो सकता। भक्ति मोह की निवृत्ति के बिना नहीं हो सकती, मोह की निवृत्ति ज्ञान और वैराग्य के बिना संभव नहीं। ज्ञान और वैराग्य मन की निर्मलता के बिना नहीं होते। मन की विशुद्धि (निर्मलता) निष्काम कर्मों के बिना संभव नहीं। अतः ये सब परस्पर संबद्ध हैं। एक के बिना दूसरे की प्राप्ति संभव नहीं।।

।। श्रीमस्तनाथचरित में प्रलयाग्नि से ग्रामदाह वर्णन नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त।।

उन्नीसवाँ अध्याय

शुद्ध धर्म का कुशल उपदेश देने वाले, अपने भक्तों का उद्धार करने वाले, विपत्तियों को दूर भगाने वाले, अपमानित होने पर रुद्ररूप धारण कर विध्वंस करने वाले और आदर होने पर यज्ञ की सृष्टि करने वाले, चन्द्रकला को अपनी जटाजूट में धारण करने वाले, इच्छानुरूप शरीर धारण करने वाले, प्राणियों के कष्टों को दूर करने वाले शिवरूप सिद्ध मस्तनाथजी को मैं नमन करती हूँ।

बीकानेर नामक एक विशाल नगर है। वहाँ पर किसी समय अधिकतर जैनधर्म के अनुयायी धार्मिक लोग रहते थे। अनेक अद्‌भुत देवमन्दिरों व उद्यानों से वह नगर सुशोभित था। वहाँ पर धर्मपरायण गजसिंह नाम का राजा राज्य करता था। वह विद्वान्, ब्राह्मणों, सिद्धों, सन्तों, देवों तथा गुरुओं का बहुत सम्मान करता था। इसके अतिरिक्त अपने कोश (खजाने) का ध्यान रखते हुए वह समस्त राजकर्मचारियों को सन्तुष्ट करता हुआ बड़े प्रेम से प्रजा का पालन करता था। उसकी कीर्ति समुद्र पार तक भी पहुँच गई थी। वहाँ की भूमि यद्यपि रेतीली है तो भी वहाँ पर सब प्रकार का अन्न पैदा होता था। वसन्त ऋतु में

तो वह भूमि फल एवं फूलों से अत्यन्त रमणीय हो जाती है। उसने रेलगाड़ी एवं मोटर आदि चलाने से राहगीरों की यात्रा को सुगम बना दिया था और बिजली के प्रकाश से रात्रि में गहरे अन्धकार को दूर कर दिया था। वहाँ डाक–तार की सुन्दर व्यवस्था थी। वहाँ कृत्रिम वन थे तथा सुन्दर नदियाँ कलकल का शब्द करती हुई बहती थी। उनकी नीति के विषय में शत्रु तक भी पता नहीं लगा पाते थे। उस प्रदेश में चोरी का नाम तक सुनने में नहीं आता था। उनके शासन में समस्त प्रजाजन अपने–अपने धर्म में अनुरक्त थे और बड़े आनन्द एवं शान्ति से रहते थे। वहाँ के राजा शोक–मोहादि से रहित थे क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्र की भाँति अधर्म तथा दुष्ट समुदाय का विनाश कर दिया था और देवताओं तथा ब्राह्मणों तक को प्रसन्न कर दिया था। उस गजसिंह का प्रिय पुत्र सुरतसिंह हुआ। अपने जीवन के अन्तिम समय में राजा गजसिंह ने अपने राज्य का भार उसके कन्धों पर रख दिया। उनके राज्य में किसी प्रकार की दैवकृत या मनुष्यकृत आपत्ति नहीं थी। अतः एक बार राजा ने मंत्री को बुलाकर देव पूजनादि के निमित्त ब्रह्मभोज करने के लिए विचार–विमर्श किया। राजा के कहने पर मन्त्रियों ने एक महान् उत्सव का आयोजन किया जिसमें बड़े–बड़े विद्वान् ब्राह्मण, योगी तथा अन्य व्यक्ति भी आमन्त्रित किए गए। वहाँ पाकशाला

में हलुवा, खीर, बादाम, मिश्री इत्यादि से बनी हुई अनेक प्रकार की मिठाइयाँ व शाकसब्जी, चटनी व इमली के रस से बने हुए अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ बने हुए रखे थे। उसी समय मस्तनाथ बाबा अपने शिष्यों के साथ किसी दूसरे स्थान पर जा रहे थे। उन्होंने उस भोज में जाती हुई भीड़ के बारे में एक पाली से पूछा। उसने ब्रह्मभोज का सारा हाल उन्हें सुनाया। पाली (गाएँ चरानेवाला) से सुनते ही गुरुबाबा उसी समय यज्ञ की शोभा देखने चल पड़े। उनके साथ एक रूपनाथ नाम का शिष्य भी था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कुछ भस्म (राख) तथा एक जलती हुई लकड़ी[1] रूपनाथ के हाथ से कटाह में फिकवा दी क्योंकि विधि बलवान् होती है, वह जैसा चाहे वैसा करवा देती है। उन्हें ऐसा करते देखकर लोग कहने लगे कि यह नंगा पागल साधु कहाँ से आगया जिसने बड़े प्रेम से बनाए हुए भोजन को

---

१. पं० हरदत्त शास्त्री रचित श्रीमस्तनाथचरित में ऐसा उल्लेख है–"जब वे उस बगीचे के निकट पहुँचे तो वहाँ एक ऊँट के पैर की हड्डी पड़ी हुई थी। गुरु ने आदेश दिया कि इस हाड को उठाकर कन्धे पर रख लो और मेरे पीछे-पीछे चलो। सारे नगर में घूमते हुए वे पाकशाला में पहुँच गए। तब गुरुदेव ने शिष्य को कहा कि इस कटाह में सरेआम इस हाड़ को डाल दो। तब उस शिष्य ने निर्भय होकर वह हाड उस कटाह में डाल दिया और फिर नगर से बाहर जाकर एक पेड़ के नीचे धूना लगाकर बैठ गए।

दूषित कर दिया। न तो यह वैष्णव है और न ही जैनधर्मानुयायी, न सनातनी है अन्यथा यह ऐसा नहीं करता। अतः यह कोई नास्तिक विधर्मी है क्योंकि इसने सारा भोजन दूषित (भ्रष्ट) कर दिया है।

उस समय भूख के कारण बालक, वृद्ध व जवान सभी दुःखी होकर चिल्लाने और रोने लगे। तभी एक जैन ब्राह्मण ने जाकर राजा को सूचना दी कि एक नाथ साधु ने भोजन खराब कर दिया है। इस बात को सुनकर राजा बड़ा चिन्तित हुआ और उसने क्रोध के आवेश में कहा कि मेरे देश में सभी प्रजाजन वैष्णव हैं। अतः मद्यमांस को छूते तक नहीं हैं और न ही किसी का छुआ हुआ खाते हैं। ऐसा मूर्ख व अहंकारी वह कौन साधु है जिसने ऐसा कार्य किया। उसे जल्दी ढूंढो। वह दण्डनीय है। राजा जब अत्यन्त कुपित होकर उसे खोजने की बार–बार कहने लगा, तब राजा की आज्ञा पाकर एक दूत जंगल की तरफ गया और वहाँ उसने एक वृक्ष की छाया में बैठे हुए स्वयं देदीप्यमान मस्तनाथजी को दूर से देखा। पास गया तो उसने कन्धों पर इधर–उधर फैले हुए बालों की फटकार से पक्षिसमूह को भयभीत करते हुए तथा गर्जते हुए लाल–लाल आँखों वाले भयंकर आकृति वाले एक

शेर को वहाँ बैठे देखा। उसे देखकर वह सैनिक भयभीत होकर वहाँ से भागा परन्तु दूर जाकर मुड़कर फिर देखा तो वही साधु दिखाई दिया। फिर पास आता तो सिंह शरीर प्रतीत होता। बार–बार उसी तरह देखकर भय से कांपता हुआ सैनिक राजा के पास पहुँचा और इस अजूबे का सारा हाल सुनाया और कहा कि हे राजन् ! दूर से मनुष्य दिखाई देता है और पास जाता हूँ तो शेर दिखाई देता है। उसे कैसे पकड़कर लाऊँ। महाराजजी ! वह सिद्ध साक्षात् कोई देवता ही है। जिसके विषय में सब लोग न जानते हों वह सिद्धि सिद्धि नहीं कही जाती और जो एक होता हुआ भी अनेक शरीर धारण करने की सामर्थ्य रखता हो वही सिद्ध कहलाता है और भी उस सन्त की सिद्धि का सारी जनता बखान कर रही है। अतः अब पुनः उनको पकड़कर लाने की मुझ में शक्ति नहीं है। मेरे इस कथन को आप अपना अनादर न समझें। मैंने उस सिंह पर उसे सिद्ध समझकर प्रहार नहीं किया। हे राजन् ! उसके साथ विरोध करना ठीक नहीं है और प्रहार करना भी उचित नहीं है।

इस प्रकार सत्य कहने वाले सैनिक को राजा ने दान–मानादि से संतुष्ट किया और राजा ने अपने विश्वासपात्र मंत्री को वस्तुस्थिति का सही पता लगाने के लिए भेजा। वह मन्त्री बाबा को देखने के लिए गया और वहाँ जाने पर उसने जैसा सुना था वैसा ही पाया। वह उनके चरणों में गिर पड़ा और उस सिद्ध से क्षमाप्रार्थना कर मन्त्री ने वापिस आकर

सारा समाचार राजा से कहा, तब राजा स्वयं आया और गुरु मस्तनाथजी को अपने महल में ले गया।

जब–जब कोई अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होता है, तब–तब लोग उसे सिद्ध कहने लग जाते हैं और इसलिए देवता व मनुष्य सभी उसकी पूजा के लिए उसके पास पहुँच जाते हैं। सिद्ध की कीर्ति को देव, राक्षस तथा मानव सभी गाते हैं। इस कलियुग में तो कभी–कभार ही कोई सिद्ध देखने को मिलता है। राजा ने भी शुभ अवसर पाकर नाथजी का खूब सत्कार किया, जिस कारण वहाँ के सब लोगों ने अपनी रीति के अनुसार उन्हें अपना गुरु बना लिया क्योंकि तत्तत् नाम से पूजा करने वाले भक्तों के ऊपर वही–वही नाम वाला देवता प्रसन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त भक्तजन जिस–जिस वस्तु की कामना करते हैं उसे वह देवता पूर्ण कर देता है।

सत्कार करने के अनन्तर राजा ने अत्यन्त विनम्र शब्दों में बाबा से पूछा कि आपने उस भोजन को क्यों खराब कर दिया ? इस पर नाथजी ने कहा कि आपने अन्नयज्ञ किया है और मैंने दक्षिणा दी है, यह जो आपका कटाह है उसे मंजवाइए और देखिए। राजा ने उस वचन को सुनकर दूर रखे हुए कटाह को पास मंगवाकर देखा तो सम्पूर्ण उसे सोने

का पाया और उसके भीतर कोई चीज भी नहीं थी। फिर राजा ने भी मस्तनाथजी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया और लज्जा से अवनत हो कहा कि मैं कुछ भूमि आपको देना चाहता हूँ। तब सिद्ध ने हंसकर कहा कि हम रमते साधु हैं। हमें जमीन की कोई आवश्यकता नहीं है और कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया।

बाबा के पास जो रूपनाथ नाम का साधु था उसका साधु होने से पहले विवाह हो चुका था। जब उसकी पत्नी ने अपने पति का समाचार सुना तो वह बाबा के पास आई और पतिवियोग के कारण रोने लगी और कहने लगी कि युवावस्था शरीर को सुन्दर बना देती है। सो पति बिना वह सौन्दर्य व्यर्थ है। अतः मेरे पति को दीजिए अथवा जिससे मेरे जीवन का गुजारा हो, ऐसा उपाय कीजिए। तब उस स्त्री की इच्छा पूर्ण करने के लिए नाथजी ने उसे एक मतीरे का फल दिया। जब उसने उसको घर आकर फोड़ा तो उसमें से बीजों की जगह हजारों मोती निकले।

इस प्रकार वहाँ सिद्धि दिखाकर मस्तनाथजी वहाँ से देशान्तर में चले गए परन्तु कुछ दिन बाद बाबा के तोतानाथ नाम के शिष्य उसी स्थान पर गए और वहाँ उन्होंने भी अपनी कुछ सिद्धियाँ दिखाईं और अपने गुरु का स्मरण कराया। तब राजा ने 'थेहड़ी' नाम का

ग्राम उनको दान में दे दिया। वह राजा बड़ा दानी था और दानयोग्य पुरुष का बहुत सत्कार करता था। वह एक आदर्श पुरुष था। वह साधु (मस्तनाथजी) भी त्यागी एवं उपकार करके बदले में कुछ लेने की इच्छा नहीं करता था। अतः नाथजी भी एक आदर्श महापुरुष थे।

।। श्रीमस्तनाथचरित में बीकानेर राज्य में कटाह को स्वर्ण में बदलना व अपने शिष्य की पत्नी को मतीरा दान नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।

बीसवाँ अध्याय

अपने अनेक स्वरूपों से जगत् का कल्याण करने के लिए संसार में रमण करने वाले मस्तनाथ यति ने इस भूतल को नाना प्रकार के अपने पावन चरितों से पवित्र बना दिया। उनकी पादधूलि से पवित्र किए गए पवित्र स्थलों में से एक 'अचरावल' नाम का नगर था।

एक बार गुणों में अपने से कम परन्तु समान वेश वाले अनेक साधुजनों को देखकर अपने अभिमान का परित्याग करके उन्होंने कहा कि इस समय कोई मानव मरणासन्न है। तुम में से किसी में सामर्थ्य है जो उसे जीवनदान देकर यमराज के दूतों से उसकी रक्षा करे। तब सिद्ध मस्तनाथजी के वचन को सुनकर वे साधु कहने लगे कि सामर्थ्यवान् सब कुछ कर सकता है। वह समस्त मनोरथों को पूर्ण कर सकता है और सब प्रकार के अनिष्टों को दूर भगा सकता है। वह यमराज को जीतकर मरे हुए को भी जीवित कर सकता है और सजीव को निर्जीव बना सकता है। हे प्रभो ! हम तो आपके सेवक हैं। आपकी सेवा ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य है न कि आपकी समानता करना। तब गुरुदेव ने कहा कि कोई गौ कीचड़ में फंसी हुई है, उसका उद्धार करना चाहिए अथवा नहीं ? इस विषय में तुम लोगों

की क्या राय है ? तब शिष्यों ने बहुत सोचकर चकित होकर पूछा कि कौन गौ है, कहाँ से आकर धंसी है, कौन सा कीचड़ है, कैसा धंसना है, धंसने का क्या कारण है और उसका निकालना उचित है अथवा नहीं ? इत्यादि सब बातों का भेद कृपया हमें बतलाइए।

शिष्यों के इस प्रकार के जिज्ञासापूर्ण वचन सुनकर सिद्ध मस्तनाथजी कहने लगे कि शीलस्वभाव तथा दयालु राजा मानसिंह ही गौ है। यद्यपि उसके शत्रु का अहंकार भंग हो चुका है, तो भी काल के भय से वह बहुत डरा हुआ है। अपने शत्रु भीमसिंह के राज्य में 'जालौर' नामक किले में वह किसी घटनाचक्र में जा फंसा है। भीमसिंह की सेनारूपी कीचड़ में प्रवेश होने से वह धंसा हुआ है अर्थात् भीमसिंह की सेनाओं ने उसे चारों तरफ से घेर रक्खा है। सुशीलता तथा उदारतादि गुणों से युक्त, समय–समय पर गुणिजनों से प्रशंसित जो वह योद्धा था, आज वह विपत्ति में पड़ा हुआ है। आज वह उस संकट की घड़ी में अपने गुरु को स्मरण करते हुए उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना कर रहा है। यदि इस विपत्तिकाल में उसकी सहायता नहीं होगी तो वह निर्दय भीमसिंह अपनी अदम्य शक्ति से पिता द्वारा एकत्रित की हुई समस्त भूमि को शत्रुरहित और अपने अधीन कर लेगा। जिस प्रकार दुर्योधन ने अपनी कुनीति से सारी भूमि को अपने अधीन कर लिया था जिस कारण

भीमसेन उसका शत्रु हो गया था और आज ठीक उसके उलटे भीमसिंह कुनीति के द्वारा समस्त कुरुदेश का राजा बना हुआ है। वह पिता, मित्र, पुत्र, बन्धु छोटे भाई तथा बड़े भाई–इन सबको दण्ड दे चुका है। अब वह मानसिंह को भी अपनी दण्डनीति का शिकार बनाना चाहता है। अतः अब ज्यों–ज्यों विलम्ब होता जा रहा है त्यों–त्यों उसके (मानसिंह) का विनाश समीप आ रहा है। अतः सतत (निरन्तर) मेरा चिन्तन करने वाले उसकी संकट से विमुक्ति कराने के लिए मैं जाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा हो रही है क्योंकि गुरु, इष्ट मंत्र, अपना इष्ट देव, सद् बन्धुवर्ग तथा सच्चा मित्र–ये सब संकट की घड़ियों में सहायक न हुए तो इनका जन्म व्यर्थ है और भी जब–जब भक्तों पर संकट आए हैं तब–तब अजन्मे, अविनाशी परमेश्वर ने जगत् में स्वयं अवतार धारण करके भक्तों का संकट दूर किया है, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है। इस प्रकार कहकर अपनी सिद्धि के लिए विख्यात मस्तनाथजी अपने शिष्यों के साथ शीघ्रता करते हुए जोधपुर के समीप जा पहुँचे।

वहाँ पर साधुओं का एक पवित्र निवास स्थल था जिसको लोग 'बाबा वाली टेकरी' कहते थे। उस स्थल को बाबा ने अपने आगमन से सुशोभित किया। उनके आगमन को सुनकर भक्तजन आने लगे। जो दुष्ट लोग हैं, वे सत्पुरुषों के गुणों में दोष रूप छिद्र देखा

करते हैं और गुणशून्य अयोग्य म्लेच्छ तो स्वभाव से ही दूसरों की निन्दा किया करते हैं। दूषित प्रदेशों में भरा हुआ जल गन्दा हो जाता है और गन्दी वायु के प्रकोप से उसमें कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं फिर उस जल से रोग फैलते हैं, इसी प्रकार दुष्ट दूत के संग से राजा का मन भी विकृत हो जाता है और उसके हाथ से बड़े–बड़े अनर्थ हो जाया करते हैं। अतः भीमसिंह के दुष्ट प्रकृति वाले दूतों ने यह निवेदन किया कि शत्रु का भेजा हुआ, अत्यन्त क्रोधी, कानों में कुण्डल पहने हुए योगिवेष वाला कोई गुप्तचर आया है। न तो उसके सच्चरित्र के बारे में हमने लोगों से सुना है और न ही उसकी वाणी में कोमलता (मृदुता) है, न ही साधु के कृत्य में निपुणता है और बार–बार कह रहा है कि मारना और जिलाना तो मेरी जुबान का खेल है। जो मेरे कहने के अनुसार कार्य करेगा वह निश्चित ही अपने कार्य को सिद्ध कर सकता है। किसी को मैंने पुत्र दिया, किसी को शाप देकर सुखों से वञ्चित कर यमलोक भेज दिया; इस प्रकार की मेरी कीर्ति सब जगह प्रसिद्ध ही है और कह रहा है कि हम लोग राजा के गुप्त से गुप्त दूत के भाव को भी जान लेते हैं– इत्यादि बहुत से दुर्वचनों वाली दूतों द्वारा की हुई बाबा की निन्दा सुनकर वह भीमसिंह अत्यन्त क्रुध होगया। यद्यपि उसके अनेक शत्रु थे परन्तु राज्य का अधिकारी होने के कारण वह मानसिंह

को ही अपना शत्रु मानता था। इसीलिए वह बाबा को मानसिंह का गुप्तचर समझने लगा। अतः अपने पराये के ज्ञान से शून्य, उन्मत्त अपने सैनिकों को भीमसिंह ने मानसिंह का मान भंग करने की आज्ञा दे दी। तब समस्त प्राणियों के अन्तःस्थ भावों को जानने वाले सिद्ध मस्तनाथजी ने प्रधान सेनापति के चित्त को प्रेरित किया जिस कारण उसके दूत ने मानसिंह के पास जाकर भीमसिंह का सारा रहस्य कह दिया कि आप कहीं जल्दी से भाग जाइये क्योंकि भीमसिंह आपको मारने की इच्छा से आपके साथ युद्ध करना चाहता है। उसने एक सप्ताह के अन्दर–अन्दर आपको पकड़कर लाने की आज्ञा दी है। अतः आप उससे पहले ही किसी गुप्त स्थान पर चले जाओ। उस मित्र दूत के इस प्रकार कहकर चले जाने पर मानसिंह अनाथों के नाथ अपने गुरु तथा उनके दिए पवित्र मंत्र का स्मरण करने लगा और सोचने लगा कि बिना साधन के युद्ध से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता और युद्ध से मृत्यु अवश्यंभावी है। अतः भीमसिंह जैसे प्रबल शत्रु के साथ युद्ध छिड़ जाने पर साधारण धनी की सहायता भी अपर्याप्त होगी। अतः हे गुरुवर ! आप ही मेरे रक्षक हो और मुझे इस संकट से बचाओ। इस प्रकार बार–बार प्रार्थना करने लगा। तभी संकटग्रस्त घबराए हुए मानसिंह ने मस्तनाथजी द्वारा कही हुई मधुर आकाशवाणी सुनी कि तुम तीसरे दिन राजा बनोगे।

कुछ भी चिन्ता मत करो। तब मानसिंह ने कहा कि क्या आप इन्द्र हैं ? भूत हैं या गन्धर्व हैं या मनुष्य हैं या किन्नर–इनमें से कौन हैं, जो मरणासन्न मुझ को अपनी अमृतमयी वाणी से सान्त्वना दे रहे हैं। क्या मेरे मन में विकार हैं अथवा भ्रान्ति है, मैं सोया हुआ भी नहीं हूँ और अपने निकट कुछ भी नहीं देख रहा हूँ। अतः आप जो कुछ भी हैं, मेरे सामने प्रकट हो जाइये। तनिक बताइए ! यह कैसे संभव हो सकता है ! मेरे लिए तो इस दुष्ट से बच सकना ही मुश्किल है फिर मुझे राज्यसुख मिलेगा, यह तो संभव ही नहीं है। कहीं एक कीड़ा सूर्य को मारकर प्रभु बन सकता है ? जब ऐहलौकिक सुख नहीं तो स्वर्ग तो बहुत दूर की बात है। असम्भव वस्तु कभी सम्भव नहीं हो सकती। श्रद्धा के दृढ़ होने पर अर्थसिद्धि हो जाती है परन्तु श्रद्धा का प्रकार अर्थसिद्धि को प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं जाना जाता। अतः आप प्रत्यक्ष होकर मार्गदर्शन कीजिए तभी मुझे विश्वास होगा। तीन दिन सहन करने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है क्योंकि प्राण निकल जाने पर रोगनाश करने वाली वैद्यों की क्रिया किस काम की और वाणीमात्र पर कौन विश्वास करेगा। अतः हे गुरुदेव ! मैं दूसरे किसी को अपना रक्षक नहीं मानता। आप ही मेरे भीतर अपने स्वरूप के ज्ञान का प्रतिबिम्ब डालिए। ऐसा राजा का वचन सुनकर मस्तनाथजी ने अपने स्वरूप को प्रकट करना प्रारम्भ

किया। पहले राजा ने समझा कि कोई कुण्डलधारी हैं। फिर बड़ा भारी तेजपुञ्ज प्रतीत होने लगा। फिर क्रम से ऐसा लगा कि कंस को मारने के लिए तत्पर (उद्यत) श्रीकृष्ण भगवान् हैं। उस स्वरूप को देखकर राजा मानसिंह भयभीत होगया कि कहीं कपटी प्रछन्नवेष भीमसिंह ही न हो। इस प्रकार मानसिंह अपने गुरु के विषय में वितर्क करने लगा, तब बाबा ने अपने स्वरूप को प्रकट कर दिया। उस समय मानसिंह ने गुरु को प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! मुझे इस संकट से उबारिये ! तब नाथजी उसे कहने लगे कि यहाँ किले में मुस्लिम बादशाहों से माना हुआ एक कूप है। आप उसका जल पीकर आनन्द से रहें और वहीं पर अन्न से भरा हुआ एक कोठा है, उससे तुम्हारी जीविका आराम से चलेगी और जो गुरु का दिव्य रूप तुम्हारे समक्ष प्रकट हुआ है उसे अपने कार्य की सिद्धि के लिए भजो।

इस प्रकार अपने भक्त को कर्त्तव्य का उपदेश देकर मायावी के समान अनेक रूप धारण करने वाले शिवस्वरूप सिद्ध मस्तनाथजी अन्तर्धान होगए। जैसे अग्नि से बहुत सी चिन्गारियाँ निकलती हैं और जैसे समुद्र में अनेक लहरें चलती हैं, उसी प्रकार अदृश्य शरीर वाले शिवरूप मस्तनाथजी का दूसरा स्वरूप मन्दिर के पास प्रकट होगया। फिर उस मन्दिर के पुजारी देवनाथ से बाबा ने कहा कि राजा को तुम यह समझा देना कि तीसरे

दिन भीमसिंह की मृत्यु हो जायेगी और तू राजा बनेगा। यह आशीर्वाद तुमको मस्तनाथजी ने दिया है तथा देवपूजन करके जब राजा जाने के समय पूछे कि आपसे ये बातें किसने कही तब कह देना कि जिसने रात्रि के समय आपको कहा था, उसी ने मुझसे कही हैं। इतना कहकर यतीश्वर मस्तनाथजी तिरोहित हो गए और तत्काल ही अपने स्थान पर जा पहुँचे। उनकी समस्त शिष्यमण्डली भी उनकी सेवा में संलग्न होगई। फिर अगले प्रातः ही संध्या–वन्दनादि करने आए हुए राजा से पूजन करवाते समय देवनाथ ने मस्तनाथजी का कहा हुआ सब वृत्तान्त कह दिया।

इस घटना के ठीक तीसरे दिन अत्यन्त अहंकारी, अपनी जाति से द्वेष करने वाला राजा भीमसिंह मर गया। तब उसके मन्त्रियों ने विचार किया कि राजा के कोई पुत्र नहीं है। अतः अब इस राज्य का उत्तराधिकारी राजा मानसिंह ही है और वह इस पद के योग्य भी है। ऐसा विचार कर मन्त्रियों ने सत्कारपूर्वक मानसिंह को बुलवाया। सब कुछ पहले से जानते हुए भी मानसिंह को दूत के वचन पर विश्वास नहीं हुआ और वह भय के कारण जोधपुर नहीं गया। फिर प्रधान अमात्य (मंत्री) ने स्वयं आकर मानसिंह को भीमसिंह की मृत्यु के विषय में बताया, तब मानसिंह को विश्वास हुआ। मन्त्रियों ने बड़े सम्मान के साथ

उसे जोधपुर के राजसिंहासन पर आरूढ़ कर दिया। तब राजा ने संकट को दूर करने वाले सिद्ध मस्तनाथजी को शीघ्र बुलाने की सेवकों को आज्ञा दी। राजा की आज्ञा पाकर दूतों ने नाथजी को इधर–उधर ढूंढ़ा। तब राजा को बताए बिना ही मन्त्रियों ने स्वयं बाबा के पास जाकर उनकी वन्दना करते हुए कहा कि भक्तों के संकट को दूर करने वाले आपकी राजा मानसिंह हर समय प्रतीक्षा करते रहते हैं। तब उसके कथन को सुनकर नाथजी ने कहा कि राजा से कहना कि नाथजी आपसे बहुत प्रसन्न हैं। मैं दस दिन तक यहाँ निवास करूँगा।

यह सुनकर दूतों ने जाकर राजा को सारा वृत्तान्त कहा, जिसे सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। फिर राजा ने दूत एवं मंत्रियों के माध्यम से नाथजी के लिए खाद्य सामग्री भिजवाई और दूसरे दिन स्वयं श्रीनाथ के दर्शन करने गए तथा अपने गुरुदेव को उनके शिष्यों सहित अपने महल में ले गए। वहाँ उन्हें अत्यन्त प्रेम एवं आदर के साथ भोजन कराया और तदनन्तर राजनीति के विषय में उनसे बड़े आदर के साथ पूछा। तब गुरुदेव राजा को इस प्रकार शिक्षा देने लगे कि अपनी प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करो और उन्हें शस्त्र, शास्त्र, कृषि एवं शिल्प में निपुण बनाओ। राज्य में भोज राजा के राज्य की

भाँति संस्कृत वाणी की प्रधानता होनी चाहिए। वेद एवं वेदान्त आदि विद्या का नित्य प्रचार होना चाहिए। घण्टानादों के साथ देवालयों में पूजन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त युद्ध में लब्धकीर्ति योद्धाओं को और अधिक युद्धकला में पारंगत करो। कटार, तलवार, भाला, बन्दूक, तोप इत्यादि अनेक प्रकार के शस्त्रों का संग्रह करना चाहिए। राज्य में सन्धि, विग्रह, यान, आसन इत्यादि उपायों में प्रवीण नीतिज्ञ मंत्री रखने चाहिएं तथा वाक्पटु, चेष्टा से दूसरों के आन्तरिक भावों को जानने में दक्ष, राग–द्वेष एवं लोभ से रहित गुप्तचर विभाग होना चाहिए। शारीरिक तथा मानसिक व्याधि उत्पन्न करने वाली एवं जनता के चित्त को भ्रष्ट करने वाली गणिकाओं (वेश्याओं) और धर्म का नाश करने वाले लशुन, प्याज, मदिरा, मांस आदि पदार्थों का प्रचार अपने राज्य में मत होने देना। गौ की रक्षा करो और दूध एवं घी का निरन्तर सेवन करो। आस्तिक प्रजा की रक्षा करो, नास्तिकों की नहीं। दरिद्र ब्राह्मण एवं साधु की हमेशा सेवा करनी चाहिए। राजा और प्रजा में परस्पर मैत्री होनी चाहिए।

इस प्रकार के गुरु के सारगर्भित उपदेश को सुनकर राजा मानसिंह ने शैव, शाक्त तथा वैष्णव मतों के विषय में पूछा। तब नाथजी ने उत्तर दिया कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने समस्त दिखाई देने वाले पदार्थों और अनादि सनातन धर्म का निर्माण किया है। ब्रह्माजी

ने वेदविधि के माध्यम से इस सनातन धर्म का प्रचार किया तथा शैव, शाक्त और वैष्णव मत इसी सनातन धर्म की शाखा के रूप में फैले हैं। तुलसी की माला, शंख, चक्र, पद्म इत्यादि चिह्नों को धारण करने वाले और विष्णुमंत्र का जाप करने वाले वैष्णव कहे जाते हैं। 'ॐ नमः भगवते वासुदेवाय' तथा 'हे राम !' 'हे कृष्ण !' इत्यादि मंत्र भक्तजनों को संसार भंवर से पार उतार देते हैं। अविनाशी परमेश्वर का शिवरूप से पूजन करने वाले तथा रुद्राक्ष, त्रिपुण्ड्र चन्दन धारण करने वाले शैव कहलाते हैं। 'ॐ नमः भगवते शिवाय' तथा 'हे शिव !' इत्यादि मंत्र शैवों के हैं। हृदय में शक्ति, दुर्गादि भगवती का ध्यान करते हुए जो श्रीशक्ति का जाप करते हैं। तलवार, त्रिशूल, गदा, चक्र धारण करते हैं, वे शाक्त कहलाते हैं। 'हे दुर्गे !' 'हे कष्टनाशिनि भगवति !' 'तुम निखिल सम्पत्तियों को देने वाली हो'—इस प्रकार मंत्रपूर्वक शाक्त जाप करते हैं। ये समस्त सनातन धर्म के अवान्तर भेद धर्मप्रचार के लिए व भगवान् की प्रसन्नता के लिए तथा देशरक्षार्थ उपयोगी माने गए हैं क्योंकि धर्मनीति के द्वारा पापमात्र का विनाश हो सकता है। इस प्रकार धर्मादि नियमों का उपदेश देकर गुरु मस्तनाथजी चले गए। उनको जाते समय राजा ने बहुत भेंट दी परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं लिया।

उसी मानसिंह का वंशधर यथार्थ नाम वाला प्रजावत्सल राजा उमेदसिंह हुआ। मानसिंह भूपति ने अपने शासनकाल में सत्शास्त्र तथा संस्कृत वाणी का बहुत प्रचार किया और किसी के साथ अन्याय नहीं किया। उनके राज्य में न कोई दुःखी था और न ही नास्तिक था। उस समय न चोरी होती थी, न ही राज्य में किसी प्रकार की अशान्ति थी। कहाँ तक कहें, उनके देश में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डियाँ, शत्रु राजा आदि कष्टों में से कोई कष्ट नहीं था क्योंकि वह नीति के अनुसार शासन करता था।

।। श्रीमस्तनाथचरित में भीमसिंह का दर्पहरण एवं मानसिंह को राज्यारूढ़ करवाना नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।।

इक्कीसवाँ अध्याय

किसी समय सिद्ध मस्तनाथजी भूतल, पर्वत, तीर्थ, गुफा व मन्दिरादि समस्त स्थानों को पवित्र करते हुए एक दिन खरक नामक ग्राम में जा पहुँचे। वहाँ पर बाबा के आगमन का समाचार पाते ही पुरवासी उनके दर्शन हेतु आये। तब उनको नाथजी ने दान, यज्ञ करने व ब्राह्मण (विद्वान्), साधु व अनाथ प्रजाजनों की सेवा करने की शिक्षा दी। फिर भी लोगों द्वारा उनके आगमन का कारण पूछने पर उन्होंने अपनी सिद्धि दिखाने की इच्छा से कहा कि इस गाँव में मेरे दो शिष्य हैं, उनको लेने यहाँ आया हूँ। उनका नाम रणपति और धाता है। ऐसा कहते ही एक शक्ल के वे दोनों भाई बाबा के सम्मुख आकर खड़े होगए और उन्होंने प्रार्थना की कि हे गुरुदेव ! हम दोनों को अपने साथ ले चलो। तब नाथजी ने कहा कि घर जाकर अपने माता–पिता से आज्ञा ले लाओ क्योंकि सब वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) व आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास) के आदि गुरु माता–पिता ही होते हैं। गृहस्थ आश्रम के समान बड़ा कोई आश्रम नहीं है क्योंकि ब्रह्मचारी, योगी, संन्यासी आदि सभी का जन्म गृहस्थ आश्रम से होता है और इनकी जीविका भी इन्हीं पर निर्भर

करती है। दूसरे आश्रमों में गलती करने से व्यक्ति पतित हो जाता है परन्तु गृहस्थ आश्रम में रहता हुआ पुरुष पतित नहीं होता क्योंकि वहाँ पर लोगों में भक्ति, श्रद्धा व देवपूजनादि अधिक हैं। माता बहुत पीड़ा सहन करके बालक को जन्म देती है और उसका पालन करती है। अतः उन दोनों (माता–पिता) की आज्ञा के बिना दूसरे आश्रम में जाने की इच्छामात्र ही घोर नरक में गिराने वाली होती है। यह जगत् ब्रह्मा का बनाया हुआ है। अतः इसकी मर्यादा को भंग करके ब्रह्मा का नियम नहीं तोड़ना चाहिए। अतः आप पहले इस गृहस्थ आश्रम के गुरुस्वरूप माता-पिता से आज्ञा लो क्योंकि तुम्हारे वियोग में तुम्हारे माता–पिता रोयेंगे।

गुरु के इस प्रकार के धर्म, नीति एवं शास्त्रों के अनुरूप वचन को सुनकर वे दोनों भाई अपने घर चले गए और अपने सदाचारी माता–पिता को प्रणाम कर उन्होंने अपने संसार से विरक्त होने की आज्ञा मांगी क्योंकि प्राणियों के पूर्वजन्म में किए हुए कर्म ही इस जन्म में फलते हैं और उन्हीं के अनुसार ही व्यक्ति कार्य (उद्योग) करता है। जैसे वृक्षों में बीज के अनुसार ही फल लगते हैं। अतः जैसे कर्म होंगे, व्यक्ति की इस जन्म में भी वैसी ही बुद्धि हो जाती है। हमारी बुद्धि योग में ही लगती है, भोग–विलास की वस्तुओं में नहीं। पुत्र का इस प्रकार वैराग्ययुक्त वचन सुनकर माता–पिता ममतावश अत्यन्त उद्विग्न होगए।

किसी ने कहा कि अपने पुत्रों के धार्मिक कार्य में विघ्न नहीं डालना चाहिए और कोई कहने लगा कि अपने पुत्रों को नहीं छोड़ना चाहिए। (अर्थात् धर्म के लिए परित्याग नहीं करना चाहिए)। इस प्रकार की लोगों की बातें सुनकर वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होगए परन्तु फिर भी उन्होंने यह सोचकर कि अपने शरीर का अंश होने से आत्मरूप पुत्र से वंशवृद्धि होती है। अतः वह त्याज्य (छोड़ने योग्य) नहीं है, ऐसा निश्चय कर उन्होंने अपने पुत्रों को साधु होने से रोक दिया। माता–पिता के वचन सुनकर वे दोनों भाई घर पर ही रहे, परन्तु घर पर रहते हुए भी वे सदा दान, अतिथिसेवा व सन्तों की पूजा करने में ही लगे रहते थे। उनके इस प्रकार के कृत्य को देखकर उनके माता–पिता ने फिजूल खर्च करने वाले उनको (घर–गृहस्थी के) अयोग्य समझकर त्याग दिया अर्थात् उनको कह दिया कि अपनी इच्छानुसार कार्य करो। माता–पिता से इस प्रकार की आज्ञा मिल जाने के पश्चात् उन्होंने घर को त्याग दिया और गुरु की शरण में चले गए तथा उनके आशीर्वाद एवं उपदेश से अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर अत्यन्त तेजस्वी सन्तों के रूप में विख्यात हुए और उन्होंने बारह बरस खड़ी तपस्या भी की। सर्दी–गर्मी को सहन करने वाले, धीर स्वभाव वाले उन दोनों ने तप के बाद जप और शास्त्र का अभ्यास तथा योग, इन सबकी शिक्षा

गुरुमुख से ही ली। फिर पंचाग्नि के प्रभाव से तथा वर्षा, शीतादि के सहन करने से उनके पूर्वजन्म में किए गए शरीर संबंधित सब पाप नष्ट होगए और पाप के नष्ट हो जाने से उनमें कायिक धर्म की वृद्धि होगई जिससे उनका चित्त निर्मल होकर ध्यान में एकाग्र होगया। योग के द्वारा उत्पन्न हुआ जो मानसिक ज्ञान था, वह गुरु के वचन सुनने से प्रमाणित होगया और फिर वे धीरे–धीरे दूरदर्शी बन गए। जप के द्वारा तथा मंत्रार्थ की विचारशक्ति से उनका स्वरूप देवता के समान होगया अर्थात् वे साक्षात् सिद्धस्वरूप होगए।

धाता व रणपति को उपदेश देने से मस्तनाथजी के गुरुत्व की प्रसिद्धि होगई अर्थात् शिष्य के अलौकिक गुण देखकर गुरु की प्रसिद्धि स्वतः ही हो जाया करती है। सिद्ध मस्तनाथजी ने उन्हें अपने सम्प्रदायानुकुल शिक्षा दी क्योंकि योग्य शिष्यों के ऊपर गुरु की इसी प्रकार की कृपा होनी चाहिए क्योंकि सुना हुआ ज्ञान भक्ति के लिए होता है। अतः ज्ञान भक्ति प्राप्त करने का साधन है और भक्ति फल है। इसीलिए ज्ञान भक्ति से श्रेष्ठ है अर्थात् सबसे उत्तम है। भक्ति से देवों का पूजन करने से आत्मा प्रत्यक्ष होती है और शास्त्रों में बताया गया मोक्ष फल स्वतः प्राप्त हो जाता है। जप एवं शास्त्र के साथ गाढ सम्बन्ध होने से मनुष्य को जीव, राक्षस, प्रेत व देवों का शब्द अलग–अलग ज्ञात होने लग जाता है और सिद्धि का अभ्यास हो जाने पर शब्दादि पंचतन्मात्राओं में समाधि लग जाने से योगी

पंचतन्मात्राओं पर विजय पा लेता है, तब उस समाधि के फलस्वरूप उसे त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्यत्) का ज्ञान हो जाता है। जिसके प्राप्त हो जाने पर वह जीवसमुदाय का उपकार करता है।

इस प्रकार की तपश्चर्या में लीन रहते हुए उन्होंने ब्रह्मस्वरूप परमपद को भी पा लिया। जीवन्मुक्त पद को प्राप्त कर लेने से उनकी समाधि प्राणरहित (निर्जीव) पुरुष की भाँति हो गई क्योंकि जीवन्मुक्त पुरुष तो राग–द्वेष से रहित होकर केवल इस जगत् को देखता रहता है और वह किसी विषय में आसक्त नहीं होता परन्तु नित्यकर्मादि में जो प्रवृत्ति है वह प्रारब्ध कर्म के बल से प्रकृति करती रहती है, वह तो केवल साक्षीमात्र रहता है अर्थात् वे दोनों परमात्मा की भाँति कर्मों के केवल साक्षीमात्र रह गए।

इस प्रकार उन्होंने बारह वर्ष तक खड़ी तपस्या की और वे नागे पीर के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने जीवित ही समाधि ली थी ऐसा लोग कहते हैं। उनका धूना आज भी मठ, अस्थलबोहर में विराजमान है जिसकी मान्यता उनके गुरुदेव के समान ही है। ऐसे वे सिद्ध मस्तनाथजी के शिष्य हुए जिनका मन कभी विषयों से विकृत नहीं हुआ और वे निरन्तर परमात्मा में लीन रहे।

।। श्रीमस्तनाथचरित में धाता रणपति योग वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।।

बाईसवाँ अध्याय

हे श्रीनाथ ! मेरे प्रिय गुरुवर ! मैं तुमसे बार–बार यही वरदान माँगती हूँ कि मेरी प्रीति तुम्हारे चरणकमलों में नित्य बनी रहे। ऐसे ही मेरे आदरणीय गुरुदेव का धड़ीनाथ नाम का शिष्य हुआ जो बहुत सुशील था और उन्हें वह अत्यन्त प्रिय था। वह प्रतिदिन एक धड़ी अन्न खाता था, फिर भी वह संसार से विरक्त था। एक बार उसकी हृदयंगत मनोकामना को जानकर गुरुदेव ने उसे अपने समीप बुलाया और कहा कि तुम तीर्थयात्रा करना चाहते हो तो किसी उत्तम तीर्थस्थान पर ही जाना। तब वह शिष्य गुरु से आज्ञा पाकर अकेला ही कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, बद्रीनाथ, अमरनाथ, प्रयाग, काशी इत्यादि स्थानों पर गया। इसके अनन्तर उसने गया, लोकनाथ, रामेश्वर, ऐरावती नदी, द्वारिका, उज्जैन में श्रीमहाकाल, गोदावरी इत्यादि के पैदल ही दर्शन किए। फिर वृन्दावन की तरफ चल पड़ा और वहाँ यमुनाजी के भी दर्शन किए। इसके पश्चात् वह अयोध्या गया। इस प्रकार अनेक तीर्थों पर घूमकर वह लौट आया परन्तु उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ और न ही देवताओं की भक्ति ही मिली। केवल कष्ट ही कष्ट का अनुभव किया क्योंकि सत्सहाय (अच्छी संगति)

सच्छास्त्र और निमित्त के बिना प्राप्तव्य वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। पैदल चल चलकर काँटों व पत्थरों से उसके पैर जख्मी होगए थे और वह बड़ी कठिनाई से थका हुआ गुरुदेव के पास पहुँच सका और गुरुदेव को प्रणाम कर कहने लगा कि कलियुग के प्रभाव से मुझे न तो अधिक अन्नदान मिला। अतः मुझे भूखा रहना पड़ा और न कहीं आदरमान मिला। इस कारण यात्रा में मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। तीर्थों पर लोगों में पाखण्ड, परनिन्दा तथा ठगी ही देखने को मिली। वहाँ पर केवल कलियुग का झण्डा फहरा रहा है। अतः मुझे संकट, मानसिक पीड़ा व शारीरिक तकलीफ ही तीर्थाटन के फल के रूप में मिले। मैंने न सुनने योग्य मानसिक परेशानी बढ़ाने वाली लोकनिन्दा भी सहन की। अतः मैंने आपके चरणकमलों के सान्निध्य को छोड़कर तीर्थों पर घूमने की बड़ी मूर्खता की तथा भोजन की आशा भी बड़े भारी दुःख का मूलकारण है। अतः हे गुरुवर ! मुझे विशेषरूप से ऐसा कर दीजिए जिससे मेरी क्षुधा की निवृत्ति हो जाए। तब बाबा ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा कि अब तुझे कभी भूख नहीं सतायेगी। उस दिन से उसने भोजन नहीं खाया और इस तरह उसने छः महीने बिता दिए।

एक दिन वह भ्रमण कर रहा था। मार्ग में उसे किसी ने भोजन दिया। परन्तु उसने

नहीं लिया। तब वह व्यक्ति बोला–हे अभोगी योगी ! तुम अब पत्थर होगए हो। यह बाबा की ही अद्भुत लीला थी कि धड़ीनाथ भूख के बिना पाथरनाथ कहलाए। उस व्यक्ति के ऐसे वचन सुनकर उसे बहुत मानसिक व्यथा हुई और वह गुरुजी के पास आकर कहने लगा कि भोगी लोग (गृहस्थी) न तो मुझे साधु कहते हैं, और न योगी, न संन्यासी, न ही ब्रह्मचारी अपितु पाथरनाथ कहते हैं। यह सुनकर मुझे बहुत लज्जा आती है। अतः आप मुझे दूसरा वरदान दीजिए ताकि मुझे दुबारा भूख लग जाए। मैं अज्ञानी मूर्ख हूँ। अतः हर बार मुझ पर कृपा कीजिए। तब गुरुदेव ने कहा कि तुम्हें दुबारा भूख लगेगी। उसी दिन से वह फिर भोजन खाने लगा तथा गुरुजी से योग के तत्त्व के विषय में विधिपूर्वक सुनकर शान्त होगया। इसके अनन्तर मस्तनाथजी ने धड़ीनाथ को पद्मासनादि सब योगाङ्गों सहित योग की सम्पूर्ण शिक्षा दे दी। उसी के साथ धाता और रणपति नाम के शिष्य भी योग का अभ्यास करने लगे और उन्होंने भी योग से बल की सिद्धि प्राप्त की। उनके तथा और दूसरे बहुत से शिष्यों के साथ बाबा एक बार घूमते–घूमते खिदवार (खिड़वाली) नगर में जा पहुँचे और नगर के बाहर ही अपना पड़ाव डाल दिया तथा हवन की लकड़ियों (धूने के लिए) के लिए धाता व रणपति को आज्ञा दी। वे आज्ञा पाते ही उस नगर में गए। उन्हें बहुत ढूंढ़ने

पर भी सूखी लकड़ी नहीं मिली। तब उन्होंने लोगों से सूखी लकड़ी माँगी परन्तु योग्य लकड़ी न मिलीं क्योंकि संसार में याचना करना (भिक्षा मांगना) बड़े हत भाग्य का काम है। लोग उन दोनों के नम्र वचन सुन–सुनकर हंसते थे। फिर भी उन दोनों ने लोगों को धूने का महत्त्व समझाया कि यह धूना आप लोगों के लिए बहुत सहायक होगा क्योंकि धूम से मेघ बनकर यथासमय वृष्टि करेगा और उस जल से सस्य की वृद्धि होगी। इस प्रकार तीनों समय (प्रातः, दोपहर, सायं) अग्निदेव की पूजा से देवगण खुश हो जाते हैं और वायु, भूमि तथा जल शुद्धि हो जाने से औषधि (जड़ी–बूटियों) की प्राप्ति होजाती है और उनसे शीघ्र आरोग्य (निरोगता) की प्राप्ति होती है। जिस स्थान के लोग तीनों काल अग्नि में हवन करते हैं, वहाँ महामारियाँ आदि नहीं फैलती और देवता भी प्रसन्न हो अभीष्ट फल देते हैं। हवन के प्रभाव से शीतकाल में भी अनिष्टकारी बर्फ नहीं पड़ती। इतना समझाने पर भी लोग नहीं माने। वहीं पर एक मोटा पेड़ (वृक्ष) सूखा पड़ा था। उसे दिखाते हुए लोगों ने उनसे मसखरी की और कहा कि इसे उठा ले जाओ। तब उन दोनों योगियों ने विषय–वासनाओं से अपने मन को हटाकर समाधि की धारणा द्वारा अपने ध्यान आदि से हाथी का बल प्राप्त कर लिया अथवा वायु से अपने में वेग बल को बढ़ाकर उस वृक्ष को

बिना टुकड़े किए ही उठा लिया और अपने गुरु के पास ले जाकर उनकी आज्ञा से उसे धूने में लगा दिया। उस भारी पेड़ के तने को उठा हुआ देखकर लोग हैरान होगए और पीछे–पीछे भागे आए।

उस पेड़ को धूने में लगा देख कुछ ने नाथजी की निन्दा की और कोई रोने लगा और कोई याचना एवं प्रार्थना करने लगा। कुछ नाथजी की स्तुति करने लगे परन्तु कुछ ने यह लक्कड़ मकान (चौपाल) बनाने के लिए है, जलाने योग्य नहीं है ऐसा कहकर उसे काटकर ले आए। तब नाराज हुए नाथजी ने कहा–"जाओ" ! इस लकड़ी से जो भवन तुम बनाना चाहते हो वह कभी नहीं बनेगा। उस वचन को सुनकर लोग बहुत भयभीत होगए और बाबा से बार–बार प्रार्थना कर यथायोग्य भेंट देने लगे परन्तु बाबा ने भेंट स्वीकार नहीं की और कहा कि भूतनी दरवाजे पर भूरे हाथी पर बैठकर बाबा आवेगा, तब हम तुमसे भेंट लेंगे।

वह शहतीर अब भी वैसे ही पड़ा हुआ है। अब तक न वह चौपाल बनी है। जब–जब उसे बनाना शुरू किया तब–तब बहुत से मनुष्य मरने लगते हैं और घर–घर में अनेक प्रकार के दुःख आने लगते हैं। वह काष्ठ आज भी मस्तनाथजी की पद्धति की स्मृति दिला रहा है अर्थात् मस्तनाथजी का स्मारक चिह्न है।

तदनन्तर नाथजी ने वहाँ कुछ दिन ठहरकर वैदिक धर्म का उपदेश दिया और फिर प्रसन्न मन से दूसरे स्थान पर चले गए। वहाँ के लोगों ने भी नाथजी के उपदेश से अपने हृदय की नास्तिकता को दूर कर दिया और धर्म के पथ पर अग्रसर होगए। उस ग्राम के दुर्व्यवहार के कारण नाथसम्प्रदाय के साधु आज भी खड़वाली गाँव में नहीं जाते हैं।[1]

।। श्रीमस्तनाथचरित में धड़ीनाथ की बुभुक्षा का निवारण व धाता व रणपति द्वारा हस्तिबल प्रदर्शन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।।

---

१. श्रीमस्तनाथचरितम् एवं श्री शंकरनाथयोगी द्वारा रचित चरित में यह अध्याय इक्कीसवाँ है और इक्कीसवाँ बाईसवाँ है परन्तु प्रसंग को देखते हुए मैंने बाईसवें को इक्कीसवें के स्थान पर व इक्कीसवें को बाईसवें के स्थान पर रखना उचित समझा है।

तेईसवाँ अध्याय

सिद्ध मस्तनाथजी के अनेक शिष्य हुए। उनमें से एक तोतानाथजी थे। वे भरतपुर के निकट 'पिगोर' नामक नगर के रहनेवाले थे। वह नगर अत्यन्त सुन्दर था। तोतानाथजी एक सुखी गृहस्थी थे। फिर भी एक बार घर बैठे–बैठे ही उनके मन में आया कि अन्त समय यह सब छोड़कर जाना है। मैं अब तक इस संसार में यूँ ही भटकता रहा। इस भ्रमजाल से जो छूट गया वही गुणवान् है। इस संसारजाल को कोई नहीं जान पाया। बार–बार इस चौरासी में भटकना पड़ता है। केवल कामविषयक अच्छी या बुरी इच्छाएँ नीच पुरुष में होती हैं। अर्थ और कामविषयक इच्छाएँ मध्यमकोटि के पुरुष में होती हैं तथा धर्म, अर्थ, काम– ये तीनों प्रकार की इच्छाएँ उत्तम कोटि के पुरुष में होती हैं परन्तु जिन गृहस्थियों की केवल मोक्षरूप काम में इच्छा होती है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–इनकी इच्छा होती है, वे उत्तमकोटि के व्यक्ति होते हैं। इसके अतिरिक्त जो गृहस्थी धर्म, अर्थ, काम–इन तीनों प्रकार की इच्छाओं से विरक्त होकर साधुवेष से अनुराग रखने के कारण इस लोक तथा परलोक से सम्बन्धित **तृष्णाओं** का परित्याग कर देते हैं वे न गृहस्थ तथा

न किसी वस्तु के अधिकारी हैं अपितु ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। इस प्रकार के विषयों से अनासक्त संयमी व्यक्तियों की बुद्धि शास्त्रसम्मत भोग भोगने के बाद भी वीत (मुक्त) पुरुष की भाँति हो जाती है। कोई तीर्थों में रमण करते हैं और कोई गुरु के आदेशानुसार अपने स्थानों पर रहते हुए ही हरि का भजन करते हैं।"

ऐसा विचार करते-करते उनके मन में वैराग्य का भाव उत्पन्न होगया। तब उन्होंने अपनी संन्यासग्रहण करने की इच्छा अपने कुटुम्बियों के सम्मुख प्रकट की और उनसे अनुमति पाकर घर के भार को उन पर सौंपकर सिद्ध मस्तनाथजी के पास आगए क्योंकि वे उनकी योगशक्ति से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने नाथजी से स्वयं को शिष्यरूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की। तब गुरुदेव ने उनकी श्रद्धा और भक्ति को देखकर उन्हें ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देकर अपनी सेवा में संलग्न कर लिया परन्तु वहाँ दैवयोग से अचानक एक कष्ट उपस्थित होगया और वह था गुरुदेव मस्तनाथजी का अन्तर्धान होना।

एक दिन सब शिष्यों के सामने गुरुदेव के मुख से अपने अन्तर्धान होने का वृत्तान्त सुनकर सब शिष्यों के साथ-साथ तोतानाथजी भी बहुत उदास होगए। वृत्तान्त इस प्रकार था कि एक बार मठ अस्थलबोहर में नाथजी तप करने के लिए एक करीरवृक्ष की छाया

में बैठे हुए थे। वहाँ उन्होंने वन के फलों का भोजन किया। तभी वहाँ पर चौरंगीनाथजी आए और उन्होंने कहा कि हे मस्त ! इस संसार में तुम भक्तों का उपकार करने के लिए आए हो। अब कब तक यहाँ रमण करते रहोगे ? अब तुम्हें यहाँ से चलना चाहिए।

उनके वचन सुनकर मस्तनाथजी ने अमृतमयी वाणी में कहा कि फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की नौवीं तिथि को यह यात्री ब्रह्मरूप होकर इस जगत् के सब प्रपञ्चों को त्याग देगा। इस प्रकार के वियोगसूचक एवं हृदयविदारक वचनों को सुनकर शिष्यों के मन में संदेह उत्पन्न होगया कि यह काल क्या चीज है और इसको किस उपाय से जाना जा सकता है ? क्या कारण है जो गुरु का भी काल आगया। तब शिष्यों ने उस काल के विषय में गुरुदेव से प्रश्न किए। तदनन्तर गुरुदेव काल के विषय में संक्षेप से बताने लगे–जब योग के द्वारा योगी ऐश्वर्यों, सिद्धियों और आत्मा को अपने प्रभाव के अधीन करके आत्मजन्म को भी स्वाधीन कर लेता है, तब वह काल का भी काल (मृत्यु) बनकर काल को भी जीत लेता है। मैं कालवश होकर संसार से नहीं जा रहा हूँ किन्तु अपनी ही इच्छा से जा रहा हूँ क्योंकि लोकमर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। योगमार्ग पर चलनेवालों को हठयोग (बार–बार जबरदस्ती) से चित्त को विषयों की आसक्ति से हटाने के अभ्यास से

राजयोग के अंग–यम–नियमादि के द्वारा अपना योग सिद्ध करना चाहिए। गृहस्थियों के उपकार के लिए दान, सद्‌विद्या का पठन, तप, जप, उत्तम मंत्रों के अर्थ का ज्ञान, दीक्षादि मंत्र की शिक्षा तथा तीनों कालों में संध्या की उपासना आदि करने का उपदेश दिया। बृहदारण्यक तथा छान्दोग्यादि उपनिषद् में जिस प्रकार 'आदेश' शब्द 'उपदेश' के लिए प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार मस्तनाथजी ने ब्रह्म के उपदेशवाक्य को 'आदेश' शब्द से कहा। शिष्यों द्वारा पुनः सत् और असत् के विषय में पूछे जाने पर गुरुदेव ने उत्तर दिया कि जो भाव के जन्म, वृद्धि, क्षय, विनाश, परिणाम, ह्रास इन छः विकारों से रहित और कूटस्थ है वही सत् है तथा चित्स्वरूप ब्रह्म है, उसी को ब्रह्मवेत्ता विद्वान् तीनों कालों में एकरस कहते हैं। इसके विपरीत संसार के सारे जड़पदार्थों को असत् कहते हैं। सूक्ष्म जीव और समस्त जगत् की उत्पत्ति, आदेशादि कर्मोपासना नीति तथा प्रवहणशील वायु आदि–ये सब परमेश्वर की लीला से ही बने हैं। जिस प्रकार पृथ्वी केवल भूकम्प के समय ही हिलती है, अन्य समय में नहीं। उसी प्रकार मुक्ति होने पर किए गए कर्मों के साथ जीव ब्रह्म में बिल्कुल लीन हो जाता है इसीलिए मुक्त पुरुष की दुबारा उत्पत्ति नहीं होती किन्तु सुषुप्ति काल में सबका लय नहीं होता। अविद्या और संस्कार की सत्ता रह जाती है। अतः फिर उत्पत्ति हो जाती है।

गुरुदेव के इस प्रकार के युक्तियुक्त वचन को सुनकर शिष्यों ने फिर प्रश्न किया कि देवता और ऋषियों के नाना रूप का जो कल्याणकारी नियम है वह उन्हें किस शक्ति से प्राप्त हुआ है ? शिष्यों के इस प्रश्न का उत्तर गुरुदेव ने इस प्रकार दिया–देवताओं के जो नाना रूप की सत्ता है वह मन के संकल्प से है, उसी से वह जीव हमेशा कार्य करता रहता है क्योंकि साकार ही कार्य कर सकता है निराकार नहीं। ऋषियों का ब्रह्मविषयक जो ज्ञान है वही सत्य है। साकार वस्तु व्यापक नहीं हो सकती, जैसे हमारा शरीर परन्तु आकार के बिना ईश्वरत्व और कृति (कार्य करने का प्रयत्न)–इन दोनों का कारण जगत् में कोई नहीं हो सकता। श्रुतियों (वेदों) में ऐसा बताया गया है कि संसार का उपादान कारण ब्रह्म है और उसका प्रकाश स्वभाव (प्रकृति) है जो सब जगह विद्यमान है परन्तु जड़ पदार्थ में वह प्रकाश तिरोहित (ढका हुआ) रहता है। चेतनप्राणी में जो अनावृतस्वरूप प्रकाश है वही ज्ञान कहलाता है। सर्वात्मा ब्रह्म एकपद (अंश) से संसार को आक्रान्त करके स्थित है, तीन अंश शुद्ध चिद् रूप हैं। इसी अभिप्राय से वेद में कहा गया है–**"पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि"**। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म देश, काल, वस्तु–इन तीनों से परिमित नहीं है किन्तु तत्तत्कार्य करने के लिए उदासीन रहता हुआ भी माया द्वारा परिच्छिन्न है अर्थात् शरीरादि धारण कर लेता है, आदि–आदि।

इस प्रकार संसार एवं योगविषयक अनेक गुत्थियों को सुलझा कर विक्रमसंवत् १८६४ (1864) फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की नौवीं तिथि को सिद्ध मस्तनाथजी बिधड़ान गाँव में अपने शिवरूप में लीन होगए। तब सब शिष्यों ने विचार किया कि प्राणायाम योग के बल से गुरुदेव ने शरीर त्याग दिया। यह समाचार चारों दिशाओं में फैल गया। सभी भक्तजन बाबाजी के पार्थिवशरीर के अन्तिम दर्शन करने आने लगे परन्तु धैर्यशाली योगी गुरु के पार्थिव शरीर को ढाई योजन (दस कोस) की दूरी पर बोहर गाँव में स्थित मठ में लाए। उन्हें समाधिलीन देखकर एक सती नारी ने मन में सोचा कि हम तो इसे गोरक्षनाथ **समझते** थे ! यदि यह गोरक्ष होता तो मरता नहीं। अतः गोरक्ष नहीं है। तब गुरुनाथजी **ने तुरन्त** नेत्र खोल दिए और सती को पास बुलाकर समझाया कि गोरक्ष योगी जीवित है, कभी **मरता** नहीं है–यह मन में दृढ़ आस्था रखो। ये वचन सुनकर गुरुदेव ने फिर नेत्र मूंद लिए और फिर प्राण ब्रह्माण्ड में लीन होगए। गुरु के वचन सुनकर सभी दंग रह गए और परस्पर कहने लगे कि यह सत्य है कि यह मरा नहीं है, जीवित ही है। सुन–सुनकर भक्तजन आते और भाँति–भाँति की भेंट चढ़ाते थे।

इस प्रकार फूलों से सारा मन्दिर भर गया और फूलों के कारण गुरुदेव का पार्थिव

शरीर भी दिखाई नहीं देता था। उस समय शंखनाद की ध्वनि वायुमण्डल में गूंजने लगी और जय–जयकार का शब्द होने लगा। समस्त शिष्यों एवं भक्तजनों ने मन में बहुत दुःख माना। "जल्दी मत करो। अभी समाधि मत लगाओ।" शिष्यों के इस प्रकार कहने पर आकाशवाणी हुई कि "समाधि दे दो। डरो मत।" जब सबने यह वाणी सुनी तो सब ओर फिर जय–जयकार होने लगी और फूल हटाकर गुरुदेव की मूर्ति के दर्शन किए जैसे कि गुरुदेव मुस्करा रहे हों। तब शिष्यों ने नाथसम्प्रदाय की परिपाटी के अनुसार सिद्ध चौंरगीनाथजी के समाधिस्थल (धूने) के समीप ही गुरुदेव को समाधि दे दी।

उसी दिन से इस समाधिस्थल[1] पर अखण्ड ज्योति[2] प्रज्वलित है। यहाँ पर प्रतिदिन सन्त एवं गृहस्थी नतमस्तक होते हैं और अपना मनवांछित फल पाते हैं।

सिद्धमस्तनाथजी के ब्रह्मलीन होने के समय से ही आज तक भी फाल्गुन मास की

---

१. इस समाधिस्थल का निर्माण तोतानाथजी ने करवाया था और बाद में रैवारी जाति के किसी धनिक ने इसका जीर्णोद्धार करवाया।

२. सम्प्रति शिवमन्दिर, चौरंगीनाथजी के धूने एवं मस्तनाथजी के उत्तराधिकारियों के समाधिस्थलों पर भी सात अखण्ड ज्योतियाँ प्रज्वलित हैं।

शुक्लपक्ष की सातवीं–आठवीं एवं नौवीं तिथि को प्रतिवर्ष उत्सव मनाया जाता है जिसमें नाना दिशाओं से योगी एवं भक्तजन आते हैं और श्रद्धा से अपना शीश नवाते हैं। इस अवसर पर अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं। समस्त भक्त व योगियों का आदर सम्मान होता है और यात्रियों के भोजन एवं आवास का निःशुल्क प्रबन्ध होता है। बाबा श्रीमस्तनाथजी के उत्तराधिकारी, योग्य एवं सत्‌शिष्य वर्तमान पीठाधीश्वर योगिराज चाँदनाथ जी ने तो उत्सव में चार चाँद लगा दिए हैं। न केवल उत्सव के समय ही अपितु प्रमुख त्यौहारों पर भी यह मन्दिर भव्य ज्योतियों से इस प्रकार जगमगा उठता है मानो धरती पर देवलोक उतर आया हो। कहाँ तक वर्णन किया जाए सिद्धमस्तनाथजी की महिमा चारों दिशाओं में फैली हुई है तथा यह अस्थलबोहर का मठ आज भी ब्रह्मविद्या के साथ–साथ भौतिक विद्या के केन्द्र के रूप में भी विख्यात है।[1]

---

१. किंवदन्ती ऐसी है कि मस्तनाथजी ने अपनी निर्वाण तिथि से पहले ही शिष्यों के महन्त के रूप में तोतानाथजी को गद्दी पर आसीन कर दिया था और अपने अतिप्रिय शिष्यों धाता एवं रणपति जी को धूने पर खड़ी तपस्या करने का निर्देश देकर स्वयं ब्रह्मलीन होगए थे। वह धूना आज भी मठ अस्थलबोहर में विद्यमान है जिसकी मान्यता अपने गुरुदेव के समान ही है और आज भी नाथजी की सिद्धि श्रद्धालु

।। सबका कल्याण होवे।।

।। श्रीमस्तनाथचरित में नाथजी का उपदेशदान, निर्वाणपदप्राप्ति तथा तोतानाथजी द्वारा मन्दिर का निर्माण नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।।

।।इति श्रीमस्तनाथचरितम् समाप्तिमगात्।।

भक्तजनों को समय-समय पर तपस्वियों के माध्यम से दिखाई देती है। जैसे अचानक अन्धी हुई नारी को नेत्रज्योति प्रदान करने की सिद्धि को मैंने प्रत्यक्ष देखा है। वर्तमान समय में धूने का संचालन तपस्वी दीवाननाथजी १२ वर्ष से कर रहे हैं तथा ३६ वर्षों से बाबा हजारीनाथजी मस्तनाथजी के समाधिस्थल की पूजा-अर्चना का कार्य सुचारू रूप से कर रहे हैं।

प्रातः स्मरणम्

प्रातः स्मरामि परमेश्वरमादिनाथं
मत्स्येन्द्रनाथं जलधारी–पदारविन्दम्।
गोरक्षनाथ–गुरुदेव–मुखारविन्दम्
गीर्वाण–वाचमनिशं गणराज–रामौ।। १।।
प्रातः स्मरामि शशिकान्त–शिलातलस्थं
सिद्धासन–सकलसिद्धसमाजजुष्टम्।
उद्यद्दिनेश–किरणारुण–जालजुष्टं
गोरक्षमक्षयमखण्डमवेद्यमाद्यम्।। २।।
प्रातर्भजामि भुजगेश्वर–यज्ञसूत्रं
तापत्रय–त्रिविधपापहरं त्रिनेत्रम्।
सिद्ध–सुरोरग–नरामर–वन्द्यपादं
गोरक्षमक्षरमनादिमनन्तमीड्यम्।। ३।।
प्रातर्नमामि निगमागमगम्यमेकं
भूभूप–भूसुर–हिताय कृतावतारम्।
शान्तं शशाङ्कदलकोमलकान्तकायं
मायापतिं पतित–पावनमप्रमेयम्।। ४।।

'योगी सम्प्रदाय नित्यकर्म संचय'
संकलनकर्त्ता– 'भंभूलनाथ योगी' से संकलित

भगवान् शिव शंकर की आरती

जय शिव ओंकारा हर शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धाङ्गी गौरा।।१।। ॐ हर हर हर महादेव

एकानन चतुरानन पंचानन राजे।
हंसासन गरुडासन वृषवाहन साजे।।२।। ॐ हर हर हर महादेव

दो भुज चार चतुर्भुज अष्ट भुज तुम सोहे।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जग मोहे।।३।। ॐ हर हर हर महादेव

श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे।।४।। ॐ हर हर हर महादेव

अक्षमाला बनमाला रुण्डमाला धारी।
चन्दन मृगमद लेपन भाले शशिधारी।।५।। ॐ हर हर हर महादेव

कर मध्ये सुकमण्डल चक्र त्रिशूल धरता।
दुःख हरता सुख करता युग पालन करता।।६।। ॐ हर हर हर महादेव

शिवजी के हाथों में कंगन कानों में कुण्डल गल मुण्डन माला।
जटा में गङ्ग विराजत ओढत मृगछाला।।७।। ॐ हर हर हर महादेव

सावित्री वर ब्रह्मा लक्ष्मी वर विष्णु।
अर्धरंगी बहुरंगी शिव गौरां संगी।।८।। ॐ हर हर हर महादेव

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव तीनों एक स्वरूप अन्तर नहीं करना।
हर–हर जपते ब्रह्मा शिव शिव रटते विष्णु भवसागर तरना।।९।। ॐ हर हर हर महादेव

सचिदानन्द स्वरूपा त्रिभुवन के राजा।
चारों वेद उच्चारत अनहद के बाजा।।१०।। ॐ हर हर हर महादेव

पार्वती पर्वत में बस रही शंकर कैलाशा।
आक धतूरे का भोजन भस्मी में वासा।।११।। ॐ हर हर हर महादेव

चौंसठ योगिनी मंगल गावत नृत्य करत भैरो।
बाजत ताल मृदंगा और बाजत डमरु।।१२।। ॐ हर हर हर महादेव

काशी में विश्वनाथ विराजे नन्दा ब्रह्मचारी।
नित्य उठ भोग लगावत महिमा अति भारी।।१३।। ॐ हर हर हर महादेव

शिवजी की संध्या आरती निशदिन जो गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी मनवांछित फल पावे।।१४।। ॐ हर हर हर महादेव

श्रीगोरक्ष चालीसा

दोहा— गणपति गिरिजापुत्र को सिमरुं बारम्बार।
हाथ जोड़ विनती करूँ शारदा नाम अधार।।

चौपाई— जय–जय–जय गोरक्ष अनिवाशी, कृपा करो गुरुदेव प्रकाशी।
जय–जय–जय गुणज्ञानी, इच्छा रूप योगी वरदानी।।

अलख निरञ्जन तुम्हरो नामा, सदा करो भक्तन हित कामा।
नाम तुम्हारा जो कोई गावे, जन्म–जन्म के दुःख नशावे।
जो कोई गोरक्ष नाम सुनावे, भूत–पिशाच निकट नहीं आवे।
ज्ञान तुम्हारा योग से पावे, रूप तुम्हारा लख्या न जावे।
निराकार तुम हो निर्वाणी, महिमा तुम्हरी वेद बखानी।
घट–घट के तुम अन्तर्यामी, सिद्ध चौरासी करें प्रणामी।
भस्म अङ्ग गले नाद विराजे, जटा शीश अति सुन्दर साजे।
तुम बिन देव और नहीं दूजा, देव मुनि जन करते पूजा।
चिदानन्द सन्तन हितकारी, मंगल करे अमंगल हारी।
पूर्ण ब्रह्म सकल घटवासी, गोरक्षनाथ सकल प्रकाशी।

गोरक्ष गोरक्ष जो कोई ध्यावे, ब्रह्मरूप के दर्शन पावे।
शङ्कर रूप धर डमरू बाजे, कानन कुण्डल सुन्दर साजे।
नित्यानन्द है नाम तुम्हारा, असुर मार भक्तजन रखवारा।
अति विशाल है रूप तुम्हारा, सुर नर मुनि जन पावें न पारा।
दीन-बन्धु दीनन हितकारी, हरो पाप हम शरण तुम्हारी।
योग युक्ति में हो प्रकाशा, सदा करो सन्तन तन वासा।
प्रातःकाल ले नाम तुम्हारा, सिद्धि बढ़े अरु योग प्रचारा।
हठ-हठ-हठ गोरक्ष हठीले, मार-मार वैरी के कीले।
चल-चल-चल गोरक्ष विकराला, दुश्मन मार करो बेहाला।
जय-जय-जय गोरक्ष अविनाशी, अपने जन की हरो चौरासी।
अचल अगम है गोरक्ष योगी, सिद्धि देवो हरो रस भोगी।
काटो मार्ग यम की तुम आई, तुम बिन मेरा कौन सहाई।
अजर अमर है तुम्हरी देहा, तुम अविनाशी सनकादिक सब जोरहिं नेहा।
कोटिन रवि सम तेज तुम्हारा, है प्रसिद्ध जगत् उजियारा।
योगी लखें तुम्हारी माया, पारब्रह्म से ध्यान लगाया।
ध्यान तुम्हारा जो कोई लावे, अष्ट सिद्धि नव निधि घर पावे।
शिव गोरक्ष है नाम तुम्हारा, पापी दुष्ट अधम को तारा।
अगम अगोचर निर्भय नाथा, सदा रहो सन्तन के साथा।

शङ्कर रूप अवतार तुम्हारा, गोपीचन्द भर्तृहरि को तारा।
सुन लीजो गुरु अरज हमारी, कृपासिन्धु योगी ब्रह्मचारी।
पूर्ण आस दास की कीजे, सेवक जान ज्ञान को दीजे।
पतित पावन अधम अधारा, तिनके हेतु तुम लेत अवतारा।
अलख निरञ्जन नाम तुम्हारा, अगम पंथ जिन योग प्रचारा।
जय–जय–जय गोरक्ष भगवाना, सदा करो भक्तन कल्याना।
जय–जय–जय गोरक्ष अविनाशी, सेवा करें सिद्ध चौरासी।
जो पढ़ही गोरक्ष चालीसा, होय सिद्ध साक्षी जगदीशा।
बारह पाठ पढ़े नित्य जोई, मनोकामना पूर्ण होई।
और श्रद्धा से रोट चढ़ावे, हाथ जोड़कर ध्यान लगावे।

दोहा– सुने सुनावे प्रेमवश, पूजे अपने हाथ,
मन इच्छा सब कामना, पूरे गोरक्षनाथ।

अगम अगोचर नाथ तुम, पारब्रह्म अवतार।
कानन कुण्डल सिर जटा, अंग विभूति अपार।
सिद्ध पुरुष योगेश्वरो, दो मुझको उपदेश।
हर समय सेवा करूँ, सुबह शाम आदेश।

।। इति गोरक्ष चालीसा समाप्त ।।

श्री नाथजी का बालाष्टक नं० १

ॐ गुरु जी प्रथम सिमरण गुरुजी का करलो हृदय में ज्ञान प्रकाशकम्
श्री आदि योग युगादि ब्रह्म सेविते सिव माधवम् श्री बाल गोरक्ष के
चरण प्राणाम्यहम्, जय श्री नाथजी के चरण प्रणाम्यहम्। जै हो जती
गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्–श्री गुरु जी के चरण प्रणाम्यहम्।।१।।

ॐ गुरुजी बाल जती गुरु ब्रह्मज्ञानी घट ही में ज्योति प्रकाशकम्
उदित भानु बसन्त कमला श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।२।।

ॐ गुरुजी रहित निशदिन अगम अगोचर सिद्ध ज्ञान प्रकाशकम्
श्री जपत सुरनर देव मुनिजन श्रीबाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।३।।

ॐ गुरुजी आकाश धूना पाताल मण्डल पवन संगम साहेरा
श्री अमर अयोनी जी का सिमरण करलो श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।४।।

ॐ गुरुजी आदि अन्त अनादि निर्भय रहत निशदिन उन्मुना
श्री लक्ष चौरासी जीव योनियों से नाम रख दो श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।५।।

ॐ गुरुजी जल को अम्बर थल तो सागर सोहत कंठ में मेखला
श्री कानों में कुण्डल विभूति आभरण श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।६।।

ॐ गुरुजी एक ज्योति गुरु सकल व्यापी कोटि कुंजर पराकरम्
श्री मदनमोहन जी का मान रख लो श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् ।।७।।

ॐ गुरुजी आबू का मण्डल द्वारका क्षेत्र गोरक्ष मढ़ी स्थान है
श्री माधो प्रांची में श्री नाथ जी ने रुक्मिणी जी को कंगन बान्ध्यो श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् ।।८।।

ॐ गुरुजी इतना श्री नाथ जी का बालाष्टक पढ़त निशदिन कैलाश वासा सदा फल
श्री देवकृष्ण श्रीनाथ जी की शरण आयो श्री बाल गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् ।। (पूर्ववत्)

गोरक्षनाथाष्टक नं० २

गोरक्ष नाथ सुनाथ निर्भय निर्विकार निरंजनम्
अजर अमर अडोल निश्चल श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्
जय श्री नाथ जी के चरण प्रणाम्यहम् जय हो जती गोरक्ष के
चरण प्रणाम्यहम्, श्री गुरु जी के चरण प्रणाम्यहम् ।।१।।

ब्रह्म शेष महेश नारद अष्ट भैरव सिद्ध यति
ध्यावते दोउ पाद पंकज ध्यावते सिद्ध गणपति श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।२।।

अष्ट सिद्धि नवनिधि वन्दित ध्यावते रघुवर सिया व्यास शुक
प्रह्लाद सेवत सेविते हनुमत प्रिया श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।३।।

शून्य मन्दिर करत आसन योग ध्यान सदा रटन (रत)
आत्म लाभ सन्तोष पूर्ण **श्री** गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।४।।

मान नहीं अभिमान जाके कनक माटी एक समान
राग द्वेष अतीत मनसा श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।५।।

अंग विभूति विराजत सुन्दर लाल तिलक त्रिलोचनम्
चन्द्र सूर्य अग्नि कहिये कर्ण कुण्डल अद्भुतम् श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।६।।

ज्ञान ध्यान अचिन्त्य मूर्ति आत्म ज्योति सदा शिव
त्रिगुण रूप अतीत तुर्य्या श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।७।।

श्री कृष्णचन्द्र सु ध्यान कीन्हो कंस दुष्टादिक हनम् षोडश नार
सहस्र मुत पाइये अष्टचक्र ऊपर शोभितम् श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।८।।

अक्षमाल विराजत सुन्दर चर्म चन्दन मृग धरं
त्राटक मुद्रा ज्ञान पूर्ण कथंते सनकादिकं श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत् ।।९।।

गोरक्ष अष्टक पढ़त निशदिन कैलाश वासा सदा शिवं
सर्वं तीर्थ लभ्यते पुण्यं सर्व पाप विनाशनम् श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् पूर्ववत्० ।।१०।।

सिद्धो गुरुवर ! आदेश !! आदेश !!!

श्री गुरु गोरक्षनाथजी की संध्या आरती

ॐ गुरुजी शिव जय गोरक्ष देवा श्री अवधू हर हर गोरक्ष देवा।
सुर नर मुनि जन ध्यावत सुर नर मुनि जन सेवत।
सिद्ध करैं सब सेवा श्री अवधू संत करैं सब सेवा।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।१।।

ॐ गुरुजी योग युगति कर जानत मानत ब्रह्म ज्ञानी।
श्री अवधू मानत सर्व ज्ञानी।
सिद्ध शिरोमणि राजत संत शिरोमणि साजत।
गोरक्ष गुण ज्ञानी श्री अवधू गोरक्ष सर्व ज्ञानी।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।२।।

ॐ गुरुजी ज्ञान ध्यान के धारी गुरु सब के हो हितकारी।
श्री अवधू सब के हो सुखकारी।
गो इन्द्रियों के रक्षक सर्व इन्द्रियों के पालक।
राखत सुध सारी श्री अवधू राखत सुध सारी।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।३।।

ॐ गुरुजी रमते श्रीराम सकल युग माही छाया है नाहीं।
श्री अवधू माया है नाहीं।
घट घट में गोरक्ष व्यापै सर्व घट श्री नाथ जी विराजत।
सो लक्ष मन मांही श्री अवधू सो लक्ष दिल मांही।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।४।।

ॐ गुरुजी भस्मी गुरु लसत सरजनी है अंगे।
श्री अवधू जननी है संगे।
वेद उच्चारे सो जानत योग विचारे सो मानत।
योगी गुरु बहुरंगा श्री अवधू बाले गोरक्ष सर्व संगा।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।५।।

ॐ गुरुजी कंठ विराजत सेली और श्रृंगी जत मत सुखी बेली।
श्री अवधू जत सत सुख बेली।
भगवा कंथा सोहत–गेरुवा अंचला सोहत ज्ञान रतन थैली।
श्री अवधू योग युगति झोली।
शिव जय जय गोरक्ष देवा।।६।।

ॐ गुरु जी कानों में कुण्डल राजत साजत रवि चन्द्रमा।
श्री अवधू सोहत मस्तक चन्द्रमा।
बाजत शृंगी नादा—गुरु बाजत अनहद नादा—गुरु भाजत दुःख द्वन्दा
श्री अवधू नाशक सर्व संशय।

शिव जय जय गोरक्ष देवा।।७।।

ॐ गुरुजी निद्रा मारो गुरु काल संहारो—संकट के हो बैरी।
श्री अवधू दुष्टन के हो बैरी।
करो कृपा सन्तन पर—गुरु दया पालो भक्तन पर शरणागत तुम्हारी।

शिव जय जय गोरक्ष देवा।।८।।

ॐ गुरुजी इतनी श्रीनाथ जी की सन्ध्या आरती।
निश दिन जो गावे—श्री अवधू सर्व दिन रट गावे।
वर्णी राजा रामचन्द्र स्वामी गुरु जपे राजा रामचन्द्र योगी।
मनवांछित फल पावे श्री अवधू सुख सम्पत्ति फल पावे।

शिव जय जय गोरक्ष देवा।।६।।

अथ दुर्गा चालीसा

नमो नमो दुर्गे सुख करनी। नमो नमो अम्बे दु:ख हरनी।।
निरंकार है ज्योति तुम्हारी। तिहूं लोक फैली उजियारी।।
शीश ललाट मुख महा विशाला। नेत्र लाल भृकुटी विकराला।।
रूप मातु को अधिक सुहावे। दरश करत जन अति सुख पावे।।
तुम संसार शक्ति लय कीना। पालन हेतु अन्न धन दीना।।
अन्न पूरणा हुई जग पाला। तुम ही आदि सुन्दरी बाला।।
प्रलय काल सब नाशन हारी। तुम गौरी शिव शंकर प्यारी।।
शिव योगी तुम्हारे गुण गावें। ब्रह्मा विष्णु तुम्हें नित ध्यावें।।
रूप सरस्वती का तुम धारा। दे सुबुद्धि ऋषि मुनिन उबारा।।
धर्‍यो रूप नरसिंह को अम्बा। प्रगट भई फाड़ कर खम्बा।।
रक्षा करि प्रह्लाद बचायो। हिरण्याक्ष को स्वर्ग पठायो।।
लक्ष्मी रूप धरो जग माहीं। श्री नारायण अंग समाही।।
क्षीरसिन्धु में करत विलासा। दयासिन्धु दीजे मन आसा।।

हिंगलाज में तुम्हीं भवानी। महिमा अमित न जात बखानी।।
मातंगी अरू धूमावती माता। भुवनेश्वरी बगला सुखदाता।।
श्री भैरव तारा जग तारिणी। छिन्नभाल भवदुःख निवारिणी।।
केहरी वाहन सोहे भवानी। लांगुर वीर चलत अगवानी।।
कर में खप्पर खड्ग विराजे। जाको देख काल डर भाजे।।
सोहे अस्त्र और त्रिशूला। जाते उठत शत्रु जिय शूला।।
नगरकोट में तुम्हीं विराजत। तिहूँ लोक में डंका बाजत।।
शुम्भ निशुम्भ दानव तुम मारे। रक्त बीज शंखन संहारे।।
महिषासुर नृप अति अभिमानी। जेहि अघभार महि अकुलानी।।
रूप कराल कालि को धारा। सेना सहित तुम तिहिं संहारा।।
परी भीर संतन पर जब जब। भई सहाय मातु तुम तब तब।।
अमरपुरी अरू बासवलोका। तव महिमा सब रहे अशोका।।
ज्वाला में है ज्योति तुम्हारी। तुम्हें सदा पूजें नर नारी।।
प्रेम भक्ति से जो यश गावें। दुःख दारिद्र निकट नहिं आवें।।
ध्यावे तुम्हें जो नर मन लाई। जन्म–मरण ताकौ छुटि जाई।।
जोगी सुर मुनि कहत पुकारी। योग न होय बिन शक्ति तुम्हारी।।

शंकराचार्य जब तप कीन्हों। काम क्रोध जीति सब लीनों।।
निशदिन ध्यान धरो शंकर को। काहु काल नहीं सुमिरो तुमको।।
शक्ति रूप को मरम न पायो। शक्ति गई तब मन पछतायो।।
शरणागत हुई कीर्ति बखानी। जय–जय–जय जगदम्बे भवानी।।
भई प्रसन्न आदी जगदम्बा। दई शक्ति नहीं कीन विलम्बा।।
मोको मातु कष्ट अति घोरा। तुम बिन कौन हरे दुःख मोरा।।
आशा तृष्णा निपट सतावैं। रिपु मूरख मोहि अति डरपावैं।।
शत्रु नाशा कीजे महारानी। सुमिरो इकचित तुम्हें भवानी।।
करो कृपा हे मातु दयाला। ऋद्धि सिद्धि दे करँहू निहाला।।
जब लगि जिऊँ दया फल पाऊँ। तुम्हरो यश मैं सदा ही गाऊँ।।
दुर्गा चालीसा जो कोई गावै। सब सुख भोग परम पद पावै।।
भक्त सभी शरण निज जानी। करहूँ कृपा जगदम्बे भवानी।।

भजन (१)

उठ जाग मुसाफिर भौर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।।१।।
टुक नींद से अंखियाँ खोल ज़रा और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीति करन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है।।२।।
जो कल करना है आज कर ले, जो आज करना है अब कर ले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है।।३।।
नादान भुगत करनी अपनी, ओ पापी पाप में चैन कहाँ।
जब पाप की गठरी शीश धरी, फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है।।४।।

भजन (२)

विश्वपति के ध्यान में जिसने लगाई हो लगन।
क्यों न हो उसको शान्ति क्यों न हो उसका मन मगन।।१।।

काम, क्रोध, लोभ, मोह शत्रु हैं सब महाबली।
इनके हनन के वास्ते जितना हो तुझ से कर यतन।।२।।
ऐसा बना सुभाव को चित्त की शान्ति से तू।
पैदा न हो ईर्ष्या की आँच दिल में करे कहीं जलन।।३।।
मित्रता सब से मन से रख त्याग के बैर भाव को।
छोड़ दे टेढ़ी चाल को ठीक कर तू अपना चलन।।४।।
उससे अधिक न है कोई जिसने रचा है यह जगत्।
उसका ही रख तू आसरा उसकी ही तू पकड़ शरण।।५।।
छोड़ दे राग द्वेष को, मन में तू उसका ध्यान कर।
तुझ पर दयालु होवेंगे निश्चय ही यह परमात्मन्।।६।।
जैसा किसी का हो अमल वैसा ही पाता है वह फल।
दुष्टों को कष्ट मिलता है शिष्टों का होता दुःखहरण।।७।।
आप दया–स्वरूप हैं आप ही का है आसरा।
कृपा–दृष्टि कीजिए मुझ पै हो जब समय कठिन।।८।।
मन में हो मेरे चांदना मोक्ष का रास्ता मिले।
मार के मन को 'केवल' इन्द्रियों का करे दमन।।९।।

भजन (३)

पितु मात सहायक स्वामी सखा।

तुम ही एक नाथ हमारे हो।।१।।

जिनके कछु और आधार नहीं।

तिनके तुम ही रखवारे हो।।२।।

सब भाँति सदा सुखदायक हो।

दुःख दुर्गुण नाशनहारे हो।।३।।

प्रतिपाल करो सिगरे जग की।

अतिशय करुणा उर धारे हो।।४।।

भूले हैं हम ही तुमको।

तुम तो हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो।।५।।

उपकारन को कछु अन्त नहीं।

छिन ही छिन जो विस्तारे हो।।६।।

महाराज महा महिमा तुम्हरी।
समझे बिरले बुधिवारे हो।।७।।

शुभ शान्ति निकेतन प्रेमनिधे।
मन मन्दिर के उजयारे हो।।५।।

यही जीवन के तुम जीवन हो।
इन प्राणन के तुम प्यारे हो।।६।।

तुम सों प्रभु पाय प्रताप हरि।
केहि के अब और सहारे हो।।।७।।

भजन (४)

तेरे दर को छोड़कर किस दर जाऊँ मैं।
सुनता मेरी कौन है किसे सुनाऊँ मैं।।१।।
जब से याद भुलाई तेरी लाखों कष्ट उठाये हैं।
क्या जानूं इस जीवन अन्दर कितने पाप कमाये हैं।
हूँ शर्मिन्दा आप से क्या बतलाऊँ मैं।।२।।
मेरे पाप कर्म ही तुझ से प्रीति न करने देते हैं।
कभी जो चाहूं मिलूं आप से रोक मुझे ये लेते हैं।
कैसे स्वामी आपके दर्शन पाऊँ मैं।।३।।
है तू नाथ वरों का दाता, तुझ से सब वर पाते हैं।
ऋषि मुनि और योगी सारे तेरे ही गुण गाते हैं।
छींटा दे दो ज्ञान का होश में आऊँ मैं।।४।।
जो बीती सो बीती लेकिन बाकी उमर संभालूं मैं।
चरणों में जो बैठ आप के गीत प्रेम के गालूं मैं।
जीवन प्यारे 'देश' का सफल बनाऊँ मैं।।५।।

ठुकरा दो या प्यार करो

(श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान)

देव ! तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रंग की लाते हैं।।

धूमधाम से, साजबाज से, वे मन्दिर में आते हैं।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं।।

मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लायी।
फिर भी साहस कर मन्दिर में, पूजा करने को आयी।।

धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झाँकी का शृंगार नहीं।
हाय ! गले में पहनाने को, फूलों का भी हार नहीं।।

कैसे करूं कीर्तन, मेरे स्वर में है माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को, वाणी में चातुर्य नहीं।।

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आयी।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ ! चली आयी।।

पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो।
दान–दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो।।

मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी, हृदय दिखाने आयी हूँ।
जो कुछ है, वह यही पास है, इसे चढ़ाने आयी हूँ।।

चरणों पर अर्पित है, इसको, चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो।।

।। इति।।

(संकलित)

प्रार्थना

इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना।
इतनी शक्ति हमें............

दूर अज्ञान के हों अंधेरे, तू हमें ज्ञान की रोशनी दे,
हर बुराई से बचते रहें हम, जितनी भी दे भली जिन्दगी दे,
बैर हो न किसी का किसी से, भावना मन में बदले की ना हो।
हम चलें नेक.......... ।

ये न सोचें हमें क्या मिला है, हम ये सोचें किया है क्या अर्पण।
फूल खुशियों के बाँटे सभी को, सबका जीवन बन जाये मधुवन।
अपनी करुणा का जल तू बहा के, कर दे पावन हर इक मन का कोना।
हम चलें नेक.......... ।

आरती

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्तजनन के संकट, क्षण में दूर करे।।१।।
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनसे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।२।।
मात–पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी।।३।।
तुम पूरण परमातम, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।४।।
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता।।५।।
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं दयामय, तुमको मैं कुमति।।६।।
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा–हस्त बढ़ाओ, द्वार पड़ा तेरे।।७।।
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धाभक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा।।८।।

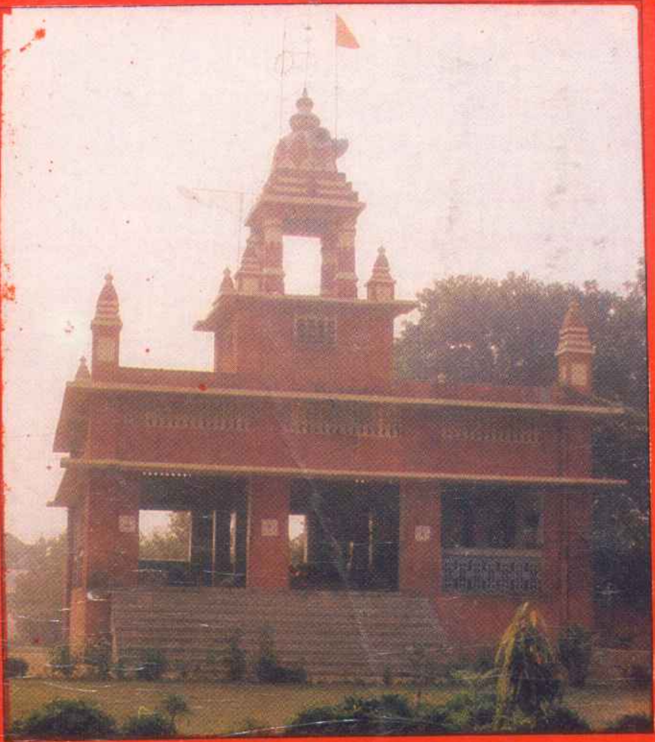

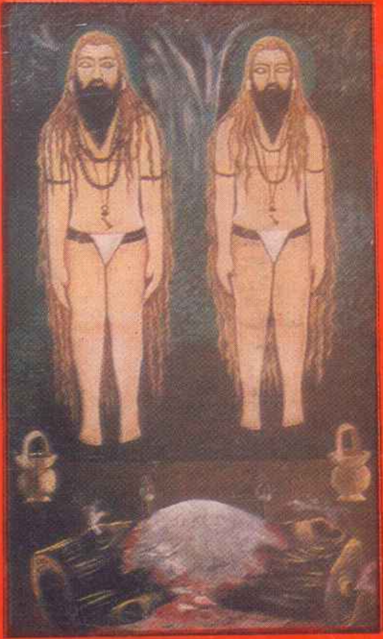

तपस्वीवर्य श्री बाबा रणपत एवं
मानधाता जी महाराज

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।। ऋग्वेद १/१/१